प्रकाशक
राजस्थानी ग्रन्थागार
सोजती गेट के बाहर
जोधपुर

प्रथम आवृत्ति 1984

मूल्य : चालीस रुपये

मुद्रक : आलोक प्रेस, जोधपुर

SAHITYIK PATRAKARITA *by Dr. Rama Singh*

समर्पण

यह कृति
उन सहधर्मी रचनाकारों को
समर्पित
जिन्होंने निरन्तर स्व-संपादित पत्रिकाएं भेजकर
साहित्यिक पत्रकारिता के प्रति मुझे आकृष्ट किया।

भूमिका

मेरे जीवन का अभिन्न अंग रही हैं पत्रिकाएं, पुरानी भी और नयी भी। अपनी 'असाधारण दिनचर्या' शीर्षक कविता मे मैंने उस दिन को असाधारण माना है जब जीवन की व्यस्तता से निकल कर मुझे ऐसा समय मिल सका कि मैंने साहित्यिक पत्रिकाओं को पढा, सवारा, तरतीब से रखा, साहित्य की इस अजस्त्र धारा मे बहकर मुझे साहित्यिक-रचनाओ के रूप मे न जाने कितनी निधि प्राप्त हो गई। मेरी कविता की पंक्तियाँ यो हैं—

"यह दिन मैंने
अच्छी तरह जिया,
×
इस दिन
'शब्द', 'अर्थ', 'सकेत', 'विविधा', 'निकष' आदि को
उलटा, पलटा, पढ़ा, गुना
इनकी गड्डियो को—
तरतीब से सवारा।
साहित्य की इस अजस्त्र धारा मे
गोताखोर की तरह डूबी
तो मेरे हाथ आये
अनगिनत रत्न और
आबदार मोती
मैंने अपने आप को वैभवशाली
और संपन्न महसूस किया'''
यह दिन मैंने
अच्छी तरह जिया' "

मेरा यह विश्वास बढता ही गया कि साहित्य-विकास के सभी आयामों को और उसके सही परिप्रेक्ष्य को जानने के लिए उन पत्रिकाओं को पढना अपेक्षित है जिनमे वे रचनाए प्रकाशित हुईं। जब कोई साहित्यिक रचना पत्रिका मे छपती है तो वह अपने सामयिक परिवेश का अंग होती है, जब वह पुस्तकाकार रूप मे सामने आती है तो वह अतीत की वस्तु हो जाती है—यह दूसरी बात है कि वह अतीत कितना पीछे का है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों को पढ़कर हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है, इसमें दो राय नहीं हो

सकती परन्तु रचनाओं में जो ऊष्मा दीप्त है, जो युगीन स्वर है, उसका परिचय तो उन पत्रिकाओं के माध्यम से ही मिल सकता है, जिनमें वे रचनाएं पहले पहल छपी।

स्वतन्त्रता-संघर्ष के दौरान स्वातन्त्र्य-प्रेम की रचनाएं पत्रिकाओं के माध्यम से ही जन-मानस तक पहुंची और वे स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर निछावर होने वाली जन-चेतना का अंग बन गई। स्वातन्त्र्योत्तर युग में भी जन-मानस की पूरी तस्वीर पत्रिकाओं के माध्यम से ही सामने आई। मोह-भंग की स्थितियां हों या वैयक्तिक ऊब हो, या समाज के प्रति प्रतिबद्ध होने की आस्था हो—ये सारे बिन्दु और इनसे जुड़ी हुई रचनाएं छोटी-बड़ी नियत-कालीन और अनियतकालीन पत्रिकाओं के माध्यम से अभिव्यक्त हुईं। इतिहासों का या संकलनों का अंग वे बाद में बनीं। हिन्दी की काव्य-धाराएं या विभिन्न वाद पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आए; शुरू हुए पत्रिकाओं से, विवाद का रूप लेकर आगे बढ़े पत्रिकाओं से और प्रतिष्ठित हुए पत्रिकाओं के द्वारा।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कोई सरल कार्य नहीं था, अपनी सारी पूंजी लगाकर और सारी देह-क्षमता लगाकर साहित्यकारों ने साहित्य का निर्माण किया और अपने युग के रचनाकारों को मंच दिया। जिस तरह देश की स्वतन्त्रता का इतिहास बलिदान की रक्ताभ-मसि से लिखा गया उसी तरह राष्ट्र की पत्रकारिता का इतिहास तपस्या और त्याग की लम्बी कहानी है, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब 'स्वराज्य' पत्र निकाला तो उसकी राष्ट्रीय चेतना को दण्डित किया गया। उस पर राजद्रोह का अपराध लगाया गया और इस अपराध में लगातार उसके आठ संपादकों को कुल मिलाकर एक सौ पच्चीस वर्ष की सजा दी गई। फिर भी उसमें यह विज्ञापन प्रकाशित हुआ " 'स्वराज्य' अखबार को ऐसा संपादक चाहिए जिसे दो सूखी रोटियां, एक गिलास ठंडा पानी और हर संपादकीय पर दस वर्ष की सजा मिलेगी।" यह विज्ञापन एक ऐसे दर्द का स्वर है जहां समझौता या पलायन के लिए जगह नहीं है, वहां दर्द झेलते रहने का संकल्प है। और यही संकल्प पूरे राष्ट्र के भविष्य का स्वप्न है।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं को चलाते रहने में संपादकों, संचालकों और व्यवस्थापकों ने अपने जीवन के भौतिक सुखों को ताक पर रख दिया। आज भी जो लोग पत्रिकाएं चला रहे हैं, उनकी पीड़ा का अन्दाजा वे ही लगा सकते हैं जो रचनाधर्मिता को प्यार करते हैं। प्रकाशन के लिए सहयोग-राशि दे-दे कर अनेक रचनाधर्मियों ने सहयोगी प्रकाशन के रूप में अनेक लघु पत्रिकाएं निकाली। ये लघु पत्रिकाएं अनेक साहित्यिक आंदोलनों की

प्रणेता रही हैं। इसलिए साहित्य के विद्यार्थी के लिए जरूरी है कि वह साहित्य-धारा के विभिन्न उतार-चढ़ावों को साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से भी जाने।

मेरी इस पुस्तक में 'पत्रकारिता' के संघर्ष को पहले अध्याय में उजागर करने का प्रयास है, दूसरे खण्ड में मैंने नियत-अनियतकालीन लघु-पत्रिकाओं के संपादकीय अंशों को उद्धृत कर उनकी संपादकीय दृष्टि को प्रस्तुत किया है। तीसरे खण्ड में साहित्यिक-पत्रिकाओं की नामावली है, और चौथे खण्ड में हिन्दी के अनेक जाने-माने उन पत्रकारों का परिचय है जिन्होंने पत्रकार जीवन के जोखिम को झेला है।

मेरा यह लघु प्रयास हिन्दी-साहित्य के समर्पित अध्येताओं और विद्यार्थियों को प्रकाश की किरण दे सकेगा, तो इसे अपना सौभाग्य समझूंगी।

हिन्दी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय
जोधपुर। रमा सिंह

पत्रकारिता की यात्रा संघर्ष की कहानी है, एक लम्बे संघर्ष की कहानी। यों भारतीय पत्रकारिता का जन्म ही संघर्ष के वातावरण में हुआ परन्तु हिन्दी के पत्रों को तो अंग्रेजी अखबारों की तुलना में कहीं अधिक संकट झेलने पड़े। विदेशी शासन की असहिष्णुता, दंभ और अत्याचार से हिन्दी के समाचार पत्र बराबर लोहा लेते रहे। हिन्दी पत्रकारिता के इस संघर्ष का आरम्भ 'उदन्तमार्तण्ड' के प्रकाशन के समय उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही हो गया था पर स्वतंत्रता संग्राम के दौरान यह संघर्ष और भी अधिक गहराता गया। 'उदन्तमार्तण्ड' में प्रकाशन-समाप्ति की घोषणा करने वाली पंक्तियां एक पत्रकार के हृदय की सघन व्यथा की कहानी कहती हैं—

> "आज दिवस लौं उग चुक्यौ मार्तंड उदन्त,
> अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अन्त।"

यह पत्र सन् 1826 की मई को शुरू हुआ और दिसम्बर 1827 में इसे बन्द करना पड़ा। आर्थिक कठिनाइयां, सरकारी सहायता का अभाव और अपर्याप्त ग्राहक संख्या के कारण यह अल्पायु रहा। इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता का शैशव आर्थिक कठिनाइयों के बीच बीता।

संघर्ष की यह स्थिति केवल आर्थिक स्तर पर ही नहीं थी वरन् स्वतंत्रता संग्राम के दौरान तो हिन्दी के समाचार-पत्रों ने शक्तिशाली अंगरेजी-शासन से सीधी टक्कर ली। अंगरेजों के दमन चक्र ने 'स्वराज्य' जैसे पत्र को खूब पीसा परन्तु 'स्वराज्य' के यशस्वी पत्रकार इस दमन नीति से भयभीत नहीं हुए। दमन-चक्र का एक ऐसा सिलसिला चला कि जब 'स्वराज्य' अखबार सन् 1907 में इलाहाबाद से निकला तो राजद्रोह के अपराध में लगातार आठ संपादकों को एक सौ पच्चीस वर्ष की सजा दी गई। इस अत्याचार को झेलते हुए भी 'स्वराज्य' पत्र का स्वाभिमान टूटा नहीं और सम्पादक पद के लिए एक पैसे घर की तरह घुमने वाला यह विज्ञापन प्रकाशित हुआ,—"स्वराज्य अखबार के लिए एक ऐसा संपादक चाहिए जिसे दो सूखी रोटियां, एक गिलास ठंडा पानी और हर सम्पादकीय पर दस वर्ष की सजा मिलेगी।"

[illegible]ार-पत्रों को निकालना और चलाते रहना एक बड़े जोखिम का [illegible] जब विदेशी सत्ता की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही हो, तब जन-[illegible]गरूक बनाए रखने का बीड़ा उठाना दुस्साध्य कार्य है। भारतवर्ष [illegible]ा का आरंभ करने वाले भारतीय पत्रकारिता के जनक अग्रर

समाजवादी विचारक और सुधारक राजा राममोहन राय थे। उन्होंने जन-चेतना को जागृत रखने के लिए कई समाचार-पत्रों को अपनी कठोर साधना से चलाया। 'संवाद कौमुदी' नामक बंगला पत्र सम्पादित कर उन्होंने 'सती प्रथा' जैसी निर्मम रूढ़ि के उन्मूलन का प्रयत्न किया और साथ ही विदेशी शासकों के शोषण से जनता को बचाने का प्रयास किया। यों 'संवाद कौमुदी' के आदि संचालक ताराचंद और उनके सपादक भवानीचरण बन्द्योपाध्याय थे पर बाद में राजा राममोहन राय ने इसे ले लिया। यहां यह रेखांकित करना अप्रासंगिक न होगा कि 'संवाद कौमुदी' की प्रभावशाली भूमिका के संयोजक और प्राण-शक्ति राजा साहब ही थे। अपनी संपादकीय दृष्टि का परिचय देते हुए 'संवाद कौमुदी' में राजा साहब ने लिखा था, "मेरा सिर्फ यही उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबन्ध उपस्थित करूं जो उनके अनुभव को बढ़ायें और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हों। मैं अपनी शक्ति भर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूं और प्रजा को उनके शासकों द्वारा स्थापित कानून और तौर-तरीकों से परिचित कराना चाहता हूं ताकि जनता इन उपायों से परिचित हो सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पायी जा सके और उचित मांगें पूरी कराई जा सकें।" इस संकल्प और आदर्श के प्रति राजा साहब बराबर सचेष्ट रहे परन्तु विदेशी शासन की कुटिल नीति के कारण राजा साहब इस पत्र का प्रकाशन रोकने के लिए विवश हुए। सन् 1821 के दिसम्बर में उन्होंने इसे प्रकाशित किया था और सन् 1823 की मई में बोझिल हृदय से उन्हें इसे बन्द करने का निश्चय करना पड़ा। अन्तिम अंक में राजा साहब ने इस बात को इन शब्दों में व्यक्त किया, "जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसमें पत्र का प्रकाशन रोक देना ही एक मात्र मार्ग रह गया है। जो नियम बन चुके हैं उनके अनुसार ... ... भारत के किसी निवासी के लिए जो सरकारी भवन की देहरी लांघने में भी समर्थ नहीं हो पाता, पत्र-प्रकाशन के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त करना दुस्तर कार्य हो गया है। फिर खुली अदालत में 'हलफनामा' दाखिल करना भी कम अपमानजनक नहीं है। लाइसेन्स के वापस लिये जाने का खतरा भी सदा सिर पर झूला करता है।"

राजा राममोहन राय विपदाओं से भयभीत होने वाले व्यक्ति नहीं थे; उन्होंने बंगाल हेरल्ड तो निकाला ही पर अंगरेजी, बंगला, हिन्दी और फारसी भाषाओं में एक और पत्र निकाला 'बंगदूत'—जिसके सम्पादकत्व का भार नीलरतन हालदार को सौंपा गया। इसका प्रकाशन मई 1829 से

प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार हिन्दी के समाचार-पत्रों की माला में एक महत्वपूर्ण कड़ी और जुड़ी। स्पष्ट यह है कि राजा साहब के संवेदनशील हृदय ने यह बात सहज ही स्वीकारी कि जन-सामान्य से जुड़ने के लिए भारतीय भाषाओं का माध्यम जरूरी है। हिन्दी पत्रकारिता की नींव डालने में केवल हिन्दी-भाषी ही नहीं थे वरन् बंग-निवासी, बंगला-भाषी और अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाले राजा राममोहन राय भी थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में दुर्गाप्रसाद मिश्र के साप्ताहिक पत्र 'उचित वक्ता' के 12 मई 1883 के अंक में पत्रकारिता की संघर्ष-यात्रा का एक और तीखा स्वर इन शब्दों में देखने को मिलता है। पत्रकारों को परामर्श देते हुए कहा गया है, "देशीय सम्पादको! सावधान, कहीं जेल का नाम सुन कर कर्तव्य-विमूढ़ मत हो जाना, यदि धर्म की रक्षा करते हुये, यदि गवर्नमेण्ट को सत्परामर्श देते हुये जेल जाना पड़े, तो क्या चिन्ता है। इसमें मानहानि नहीं होती है। हाकिमों के जिन अन्याय आचरणों से गवर्नमेण्ट पर सर्व-साधारण की अश्रद्धा हो सकती है, उनका यथार्थ प्रतिवाद करने में जेल तो क्या द्वीपान्तरित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है? क्या इस सामान्य विभीषिका से हम लोग अपना कर्त्तव्य छोड़ बैठें?" इस प्रकार की अभिव्यक्ति निस्सन्देह इस बात का प्रमाण है कि प्रारम्भ से ही पत्रकारिता को विद्वानों, विचारकों, लेखकों, सम्पादकों ने व्यवसाय के रूप में नहीं वरन् जीवन-धर्म के रूप में ग्रहण किया था।

सन् 1904 में एक पत्र निकला—'वैश्योपकारक' जिसके सपादक थे शिव चन्द्र भरतिया। इस पत्र के नाम को देख कर लगता है कि यह पत्र केवल एक जाति-विशेष का पत्र था परन्तु इसने अपनी नीति के बारे में स्पष्ट कहा था, कि अपने वैश्य बन्धुओं का सहायक और उन्नायक होने पर भी यह पत्र उनके दुराचारों का पक्षपाती न होगा। इसका मुख्य उद्देश्य समाज का सुधार करना है जिसके लिए यह प्राण-पण से चेष्टा करेगा।" समाज-सुधार के साथ राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी इसमें था। हालांकि कुछ अंकों में इसने संकीर्णता से भरी हुई टिप्पणियां दी थीं और लार्ड कर्जन की नीति को भारत की हित-कामना से युक्त बताया था। परन्तु बाद में इस पत्र में भी राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखर हुआ। स्वदेशी आन्दोलन को चित्रित करने वाला उसका एक वाक्य इस प्रकार है, "ऐसा विरला दिन होता है, जब विलायती सिगरेट व चुरुट धुंएं के साथ फेंके न जाते हों। पहले के कुछ प्रारम्भिक अंकों में उसने लार्ड कर्जन की प्रशस्ति गाई पर बाद में उसका स्वर बिलकुल परिवर्तित हो गया।

"मेरे पास कुछ रुपये हो गए थे, इसलिए मुझे मासिक पत्र निकालने की सूझी। अनेक मासिक पत्र हिन्दी में निकलते थे परन्तु उनमें कोई राजनीतिक पत्र न था, इसलिए इस अभाव की पूर्ति का ठेकेदार मैं बना। .... "मैं ही लेखक, सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक, क्लर्क और दफ्तरी सब कुछ था।"

अपनी कठिनाइयों का जिक्र करते हुए बाजपेयी जी बताते हैं कि रुपए की व्यवस्था करना, कागज लाना, प्रूफ देखना, डिस्पैच आदि कार्य सब उन्हें ही करने पड़ते थे, ग्राहकों की संख्या 200 भी नहीं थी, विज्ञापन का अभाव था, कागज भी प्रायः नहीं मिल पाता था, अत यह एक वर्ष बड़ी कठिनाई से निकल सका।

'नृसिंह' ने भारतीय समाज और हिन्दी लेखन पर अपना अमिट प्रभाव डाला। 'नृसिंह' नामकरण में भी एक उद्देश्य का संकेत इस पत्र में मिलता है। प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ पर अवतरणिका में बताया गया है कि इसका उद्देश्य अन्याय और अत्याचार से भारत के लोगों की रक्षा करना है, ठीक वैसे ही जैसे हिरण्यकशिपु की क्रूरता और हिंसा से नृसिंह अवतार ने प्रह्लाद की रक्षा की थी। अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए अवतरणिका में यह भी कहा गया है कि उस युग की असन्तुलित और विशृंखल आलोचना को सही परिप्रेक्ष्य में देखना भी इसका एक दायित्व होगा। अवतरणिका की ये पंक्तियां अत्यन्त सुबोध और प्रवाहपूर्ण भाषा में लिखी गई हैं, इन पंक्तियों में एक दृढ़ निश्चय की गन्ध है, ये पंक्तियां इस प्रकार हैं—"मासिक पत्रों का तो कोई निर्धारित लक्ष्य ही नहीं दिखता.......... किसी अंक में तो राजनीति की *भरमार, परवर्ती अंक में उपन्यासों का चमत्कार व ऐयारी का खिलवाड़,* साथ ही समाज-सुधार का विचार, ...व्याकरण का सत्कार, कभी-कभी वाग्वितण्डा का उपचार और आपस में जूती-पैजार का व्यभिचार देखने में आता है। ...."हिन्दी पत्रों की ऐसी विशृंखलित आलोचनाओं की यथाविधि सांगोपांग समालोचना करना और घोर गम्भीर भाव से आलोचित विषयों की गूढ़ गवेषणापूर्वक मीमांसा करना ही 'नृसिंह' का अन्यतम या प्रधान पुरुषार्थ है।"

"साहित्यिक उपलब्धि की दृष्टि से भी इस पत्र ने हिन्दी लेखन की परंपरा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण लेख, कविताएं, *व्यंग्य इसमें छपे। इसके एक अंक में 'स्वराज्य की आवश्यकता'* नामक लेख छपा था, उसकी निम्नलिखित पंक्तियों में ऊर्जा, सपाट बयानी और तर्कसम्मत विचारों की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, "...........जहां पांच करोड़

मनुष्यों को साल भर में एक समय भी पेट भर भोजन नहीं मिलता, जिसे पास जाड़े में रात को ओढ़ने के लिए कपड़ा तक नहीं है, जहां के छोटे किसान चाकर, उजड़, भूखा और गुम होते हैं पर उनके बदले में निरन्तर पराजित रहते हैं, जिन्हें टैक्स देने के लिए बाध्य होकर धन बेचना पड़ता है, जहां के शासक शासितों से सहानुभूति नहीं रखते, उस देश की स्थितियों की तुलना किससे हो सकती है' ...... "ऐसी स्थिति में स्वराज्य के बिना भारत की गति ही नहीं है।

'नृसिंह' पत्र में न केवल सम्पादकीय लेखों और टिप्पणियों द्वारा उस युग के स्पन्दन को व्यक्त करने वाला साहित्य छापा वरन् कविताएं, राष्ट्रभाषा सम्बन्धी विचारणा, एक लिपि का प्रश्न आदि साहित्यिक सामग्री भी छापी। इस पत्र में द्वारिकादास 'मधुर' की कविताएं छपती थीं, इनमें भी राष्ट्रीय-भावना मुखरित हुई है। उदाहरण के लिए 'परामर्श' कविता में वे भारतवासियों को उद्बोधन देते हैं—

"दासत्व को दो अब छोड़ भाई। जानो इसी में अपनी भलाई॥
मार्येत्व का नाम नहीं मिटाओ। श्वेताङ्ग पैरों पड़ना भुलाओ॥
छोड़ो अभी तो इस पालिसी को। झूठे हितैषी बनना न सीखो॥
सच्चे हितार्थी जब ही बनोगे। देशी जनों का जब मान लोगे॥
'दाता दिला दो' यह मन्त्र छोड़ो। गौरांग चेले बनने न दौड़ो॥
जोड़ो न मित्रो निज नाम साथ। सी. आई. ई. की दुम तीन हाथ॥"

इस पत्र में राष्ट्र भाषा के और देवनागरी लिपि के महत्त्व को प्रतिपादित किया था। वस्तुतः इन दिनों की पत्रकारिता ने यदि एक ओर अंग्रेजों की दमन नीति से खुलकर मोर्चा लिया तो दूसरी ओर इन्हीं भावों से भरी कविताएं और लेख आदि देकर हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की है। वाणी की स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध होने के बावजूद वाजपेयी जी जैसे तेजस्वी पत्रकार अपने सिद्धांत और विचार व्यक्त करने में कभी चूकते नहीं थे, उनके ये शब्द द्रष्टव्य हैं, "जिस देश में लिखने व बोलने की स्वतन्त्रता नहीं है, जहां देशभक्त राजद्रोही समझे जाते हैं और बिना अपराध ही निर्वासित कर दिए जाते हैं, जहां भले मानस देशनायक चोर डाकुओं से भी गये बीते समझे जाते हैं, वहां जो न हो वही आश्चर्य है।" राष्ट्रभाषा के संबंध में 'नृसिंह' में कहा गया कि "अब समय आ गया है कि समस्त भारतवासी विद्वान अथवा मूर्ख तन, मन, धन से स्वदेशोन्नति के लिए कमर कस कर खड़े हो जायं। पर सर्वसाधारण को जगाने का काम विदेशी भाषा से कभी सफल नहीं हो सकता,

के लिए राष्ट्रभाषा का प्रयोजन है।" एक ऐसी प्रेरणा इन पत्रों के
शादकीय लेखों, कविताओं तथा अन्य साहित्यिक रूपों को देखकर मिलती
जो आज भी हमारे राष्ट्र और साहित्य के लिए पाथेय है।

राष्ट्रीय प्रश्नों और समस्याओं से जो पत्र जुड़े थे और इन्हीं सवालों पर
वार करने हेतु प्रकाशित हुए थे, उनमे 'देवनागर' का स्थान महत्वपूर्ण है।
एक लिपि विस्तार परिषद्' द्वारा इसका प्रकाशन हुआ। इस परिषद् के
चालक थे जस्टिस शारदा चरण मित्र। इन्होंने देवनागर का संपादन-भार
शोदा नदन अखौरी को दिया। इस पत्र मे अनेक भारतीय भाषाओं के लेखन
ो देवनागरी लिपि मे छापने का अभूतपूर्व कार्य किया। इसका उद्देश्य यही
ा कि एक लिपि के द्वारा देश को एकता के सूत्र में बाधा जाय। वत्सर 1
क 1 मे 'आविर्भाव' के अन्तर्गत इस पत्र की रीति-नीति का परिचय इस
थन मे देखा जा सकता है, "इस पत्र मे साहित्य विषयक लेख तथा विज्ञान
ादि विषय के भी उत्तम लेख प्रकाशित किये जायेंगे। कालान्तर मे उनका
भाषान्तर भी कर दिया जायेगा। प्रत्येक अक मे किसी-न-किसी प्रान्तिक
भाषा के व्याकरण सम्बन्धी लेख अवश्य रहेंगे। और कुछ शब्द-कोष भी।"
इस प्रकार देवनागर द्वारा भारत की सभी भाषाओ की साहित्यिक रचनाओ
को निकट लाने का एक क्रांतिकारी कदम उठाया गया। अनूदित साहित्य
का एक अच्छा सकलन देवनागर के अको पर उपलब्ध है। भावात्मक और
राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से 'देवनागर' के प्रकाशन को एक विशिष्ट पत्र के
रूप मे देखा जा सकता है। इसमे छपी विभिन्न भाषाओं की रचनाएं और
उनका भाषान्तर—भारतीय साहित्य को सामने लाने का एक साहित्यिक
प्रयोग था।

रचनाएं भी छपने लगीं। गद्य के परिष्कृत और परिमार्जित होने का यह ऐसा युग था जिसने अपना प्रभाव परवर्ती चिन्तन पर डाला। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' से तो हिन्दी गद्य का बहुत उत्कृष्ट रूप सामने आने लगा था। इसी सन्दर्भ को हिन्दी के उदय का काल माना जा सकता है। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में हिन्दी की वे रचनाएं छपीं जो आज भी हिन्दी-साहित्य के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, उदाहरण हेतु भारतेन्दु का 'पांचवें पैगम्बर', मुंशी ज्वाला प्रसाद का 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', मुंशी कमला प्रसाद का 'रेल का विकट खेल' आदि रचनाओं के नाम लिए जा सकते हैं। भारतेन्दु जी के दोनों पत्रों, 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' द्वारा साहित्यिक रचनाओं को बड़ा प्रश्रय मिला। स्वयं भारतेन्दु जी ने 'कालचक्र' नामक रचना में नोट किया, "हिन्दी नई चाल में ढली; सन् 1873 ई"। सन् 1880 में यह पत्रिका पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पण्ड्या के कहने पर 'मोहन चन्द्रिका' के साथ सम्मिलित रूप में प्रकाशित हुई। पर भारतेन्दु जी का पूर्ण समर्थन न मिलने से यह पत्रिका उतनी सजीव और सप्राण न रह सकी। भारतेन्दु जी ने सन् 1874 में फिर 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका निकाली। इसका उद्देश्य था—स्त्री-शिक्षा-प्रचार।"

सन् 1877 में प. बालकृष्ण भट्ट ने इलाहाबाद से 'हिन्दी प्रदीप' निकाला। साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में इस पत्र ने असाधारण योगदान दिया। देश-प्रेम का स्वर इन दिनों की पत्रिकाओं का प्रमुख स्वर था ही, परन्तु अपनी इसी निष्ठा के कारण इनको शासन से विरोध और बाधाएं ही मिलती थीं। अत्यन्त कठोर राजकीय प्रतिबन्धों के बीच प्रकाशन करना इन संपादकों के अदम्य आत्मबल और संघर्ष का परिचायक है। 'हिन्दी प्रदीप' के संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन दृष्टव्य है, "इलाहाबाद से बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' निकाला जो दीर्घकाल तक हिन्दी की सेवा करता रहा; यह पत्र स्वाधीन विचारों का समर्थक और अपने समय के श्रेष्ठ पत्रों में था। जिस लगन से अनेक कष्ट सहते हुए वर्षों तक भट्ट जी ने इसे चलाया उसका मूल्यांकन आंकना कठिन है। उनकी दृढ़ता और अध्यवसाय आदर्श हैं।" प. बालकृष्ण भट्ट ने पूरे आक्रोश के साथ अंग्रेज शासकों की रीति-नीति पर प्रहार किया। 'हिन्दी प्रदीप' में ही उन्होंने लिखा, "..........ऐसी-ऐसी अनीति देख हम यही निष्कर्ष निकालते हैं कि भूखों के हाथों की रोटी छीन, दुखियों के तन के वस्त्र उतार, लोगों के प्राण का रुधिर चूस सरकार रुपया उगाहेगी और उस रुपये से इंग्लैण्ड की प्रबल जठराग्नि [illegible]

अंग्रेज सिविलियनो और सिपाहियों को शराब पिलायेगी। और कृत्रिम दार वचनों से फुसलावेगी कि तुम हमको प्राणों से अधिक प्यारे हो। तुम्हारे पकार के लिए, तुम्हारे ही सुख के लिए हम अपने सुखमय शीतल देश को छोड़कर यहाँ की भयानक लू सहते हैं। तुम क्यों हमसे रूठते हो, क्यों दुष्टो के बहकावे में पड़ते हो? हमारी सेवा करो, हमारे दास बनो, हमारा चरणामृत लो, हमारा नाम जपो, यही तुम्हारा धर्म है, यही तुम्हारा गुन है।"
'हिन्दी प्रदीप' में न केवल अंग्रेज शासकों के सबंध में इस प्रकार पैने व्यग्य ये इतर सामाजिक कुरीतियों पर भी भट्ट जी ने तीखे प्रहार किए; वे कहते हैं, "......काल अब बड़ा कराल आया है, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी दुर्बुद्धि का शोधन हो जाय तो फिर दुर्व्यसन, खुदगर्जी, फिजूलखर्ची, बाल्य विवाह किसके सहारे रहेंगे?......खुशामद—इस मूलमन्त्र के जप से कभी मुह न मारो, काम पड़ने पर हां मे हां मिला दिया करो।"

इसी तरह इस युग में पं. प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्र निकाल कर साहित्य के भडार की अभिवृद्धि की। वे पत्रकार स्वय ही पत्रो का खर्च उठाते थे और सपादन भी स्वयं करते थे, ग्राहक बनाना और वितरण का प्रबंध करना भी इन्ही का काम था। मिश्र जी ने भी ये सारे काम स्वय किए। यह पत्र इन्होंने मार्च 1883 में कानपुर से निकाला। उस समय के कानपुर के पूरे साहित्यिक परिवेश का इस पत्र मे चित्रण मिलता है। मिश्र जी की पत्रकारिता का आदर्श धन अर्जित करना नही था। अपने इस पत्र के पहले अक में ही मिश्र जी ने अपने इस उद्देश्य का परिचय दे दिया था, उनका कथन इस प्रकार है, "हमारी दक्षिणा भी बहुत ही न्यून है। फिर यदि निर्वाह मात्र भी होता रहेगा तो हम, चाहे जो हो, अपना वचन निबाहे जायेंगे।.... ....अरे भाई! हमने इस पत्र को अपने लाभ की गरज से नहीं निकाला। लै दै बराबर हो जाय, यही गनीमत है।" इस पत्र का लक्ष्य था—राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत रखना, और हिन्दी की सेवा करना। मिश्र जी को हिन्दी भाषा पर गर्व था, वे कहते हैं—

> धर्म गयो धन बल गयो गई विद्या अरु मान।
> रही सही भाषा हुती सोऊ चाहति जान॥
> × × ×
> आर्य देश की नागरी सब गुणागरी आय।
> यामें कछु सन्देह नहिं पै न सुनत कोउ हाय॥"

'ब्राह्मण' पत्र वस्तुत जन-सामान्य को दृष्टि में रख कर निकाला गया था। अत. उसमे प्रकाशित सामग्री की भाषा सहज, प्रवाहपूर्ण और सुबोध

थी। साहित्य की विविध विधाएँ इसमें छपती थीं, जैसे कविता, नाटक, निबंध, आलोचना, प्रहसन आदि समुचित रचनाएँ भी इसमें सम्मिलित की जाती थीं। मिश्रजी हास्य और व्यंग्य-लेखन में बड़े कुशल थे, अतः इनके पत्र में हास्य व व्यंग्य की सामग्री भी भरपूर होती थी। हास्य और व्यंग्य के कारण जन-साधारण में इसका स्वरूप बड़ा मनोरंजक बन गया था और इसी कारण से इसकी लोकप्रियता बढ़ती गई। 'ब्राह्मण' पत्र को निकालने में मिश्र जी को सबसे अधिक कठिनाई चन्दा वसूल करने में उठानी पड़ती थी। 'ब्राह्मण' के अधिकांश अंकों में चन्दा का तकाज़ा छपता था। उसके कुछ ग्राहक ऐसे थे जो आठ-दस महीने 'ब्राह्मण' पचाते थे और फिर कुछ दिन बाद सभी अंक लौटाने आ जाते थे। ऐसे ग्राहकों के लिए मिश्र जी बड़े पैने ढंग की कविताएँ लिख कर चन्दा देने के लिए उनसे कहते थे। उदाहरण द्रष्टव्य है—

> "चार महीने हो चुके, ब्राह्मण की सुधि लेव।
> गंगामाई जै करें हमें दक्षिणा देव॥
> जो बिन मांगे दीजिए दुहुँ दिसि होय अनन्द।
> तुम निश्चित हो, हम करें मंगल की सौगन्द॥
> सदुपदेश नित ही करें माँगें भोजन मात्र।
> देखहु हम सम दूसरा कहाँ दान कर पात्र॥
> रूप राज की कगर पर जितने होंय निशान।
> तितै वर्ष सुख सुजस युत जियत रहो जजमान॥

मिश्र जी गद्य में भी अपने ग्राहकों से अनेक प्रकार की बातचीत करते थे, खीझते थे और समझाते थे कि इस पत्र को लेने से ग्राहकों को लाभ ही होगा। मिश्र जी का वह कथन इस प्रकार है—

"... ...साल पूरा होने आया, कुछ न कुछ इसके सबब से लोगों को लाभ ही हुआ होगा, हानि किसी तरह की नहीं। इस पर भी जो इसके मूल्य पर ध्यान दिया जाय तो एक रुपया साल के हिसाब से महीने में सिर्फ पाँच पैसे और एक पाई होती है। गवई गाँव के लोग गंगापुत्र को कम से कम पाँच टका की बछिया पुण्य करते हैं, क्या हिन्दुस्तानी रईस लोग इस विद्यानुरागी 'ब्राह्मण' को महीने भर में बछिया के आधे दाम नहीं दे सकते हैं?"

इस तरह की सम्पूर्ण अभिव्यक्तियों में एक पत्रकार के जीवन का संघर्ष सहज ही देखा जा सकता है। 'ब्राह्मण' एक ऐसा पत्र था जिसके पास प्रेस नहीं था। मुद्रण के लिए मिश्र जी को कई-कई प्रेसों के चक्कर काटने

आवश्यक हो जाते थे; प्रेसों में अनेक बार उनका उधार चलता था, अत: इस पत्र की छपाई का काम लेने से प्रेस वाले कतराते थे। आर्थिक स्थितियों का सामना करते-करते मिश्र जी की हिम्मत टूट गई और खण्ड संख्या 7 के बारहवें अंक में उन्होंने अपना वक्तव्य 'अन्तिम सम्भाषण' के अन्तर्गत इस प्रकार दिया, "सात वर्ष का तमाशा देखते-देखते जी ऊब उठा है। यद्यपि उन लोगों से विदा होते मोह लगता है जिनके साथ इतने दिनों सम्बन्ध रहा है.......... पर क्या कीजिये, समय का प्रभाव रोकना किसी का साध्य नहीं है। अतः छाती पर पत्थर रख के विदा होते हैं।" परन्तु इस स्थिति के बाद बाबू रामदीन सिंह ने, जो खड्ग विलास प्रेस के मालिक थे, 'ब्राह्मण' की छपाई और प्रकाशन का दायित्व ले लिया। बाबू रामदीन सिंह के इस सहयोग से मिश्र जी के अनेक कष्ट कम हो गये और फिर यह पत्र खड्ग विलास प्रेस से ही निकलता रहा।

'ब्राह्मण' पत्र में प्रकाशित होने वाले साहित्य में बड़ा वैविध्य था, सामाजिक व राजनीतिक प्रश्नों से जुड़े हुए लेख व निबन्ध, कविताएँ, समालोचना, औषधि, गपशप, चुटकुले, पहेलियाँ, समाचारावली इत्यादि। इस पत्र में जिन लेखकों की रचनाएँ छपती थीं, उनमें से कुछ नाम हैं—भारतेन्दु जी, श्रीधर पाठक, राधाकृष्ण दास, हरिऔध, परमसुख 'सुखी', शिवराम पड्या, काशीनाथ खत्री इत्यादि। मिश्र जी की अपनी साहित्यिक रचनाएँ भी इसमें बराबर छपती रहती थीं।

इस प्रकार 'ब्राह्मण' पत्र के प्रकाशन से एक जागरूक साहित्यिक वातावरण बना। मिश्र जी एक समर्पित पत्रकार थे, वे लोक-हित और देश-हित को अपना लक्ष्य मानते थे। निर्भीकता और बेलाग-लपेट की आलोचना करना मिश्रजी के व्यक्तित्व का अंग था अत: उनके इस 'पत्र' में जो साहित्यिक रचनाएँ छपती थीं उनमें भी यही निर्भीकता और स्पष्टवादिता देखने को मिलती है। व्यंग्य और हास्य-लेखन में तो मिश्र जी के समान कोई दूसरा लेखक उस युग में हुआ ही नहीं। अत 'ब्राह्मण' में व्यंग्य और हास्य-साहित्य प्रभूत मात्रा में प्रकाशित हुआ। साहित्यिक पत्रकारिता का एक उत्कृष्ट रूप मिश्र जी ने हिन्दी जगत के सामने रखा। इस प्रकार भारतेन्दु युग के साहित्यिक परिवेश में प. प्रतापनारायण मिश्र की पत्रकारिता एक विशिष्ट उपलब्धि है। अच्छे परिमाण में साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित कर मिश्र जी ने हिन्दी साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वतन्त्रता संघर्ष का यह स्वर और समाज-सुधार की भावनाओं की यह अभिव्यक्ति आगे चल कर भी हिन्दी पत्रकारिता की प्राण-शक्ति बनी रही।

गांधी जी के प्रभाव से पूरा देश जन आन्दोलित था। उस समय राजनीतिक गतिविधि और साहित्यिक रचनाधर्मिता के क्षेत्र में स्वातन्त्र्य-प्रेम ही केन्द्रीय भाव के रूप में विद्यमान था। इस युग में मतवाला, सुधा, चांद, माधुरी, हंस, विशाल भारत जैसी पत्रिकाएं निकलीं और इन पत्रिकाओं के माध्यम से माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, निराला जैसे यशस्वी लेखक सामने आए। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता ने इस समय साहित्य-सर्जना के क्षेत्र को जो विस्तृत आयाम दिए वे आज भी हिन्दी साहित्य के इतिहास की गौरव गाथा का प्रमाण है। आलोचना की पैनी दृष्टि इसी युग की देन है। उदाहरण हेतु दिसंबर 1915 की सरस्वती में प्रकाशित मिश्रबन्धु विनोद की यह आलोचना (जो भारतमित्र से उद्धृत की गई थी) द्रष्टव्य है। यह लेख इस बात का प्रमाण है कि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से एक साहित्यिक चेतना और जागरूकता आकार ले रही थी। कड़ी-से-कड़ी आलोचना करने की क्षमता इस युग में दिखाई देती है। इसी लेख का एक अंश इस प्रकार है—"इस पुस्तक का नाम मिश्रबन्धु विनोद बहुत ही उचित है और इस नामकरण के लिए हम लेखकों को बधाई देते हैं .... क्योंकि यह पुस्तक मिश्र बन्धुओं ने स्वविनोदार्थ लिखी है, इसलिए यथेच्छाचार कम नहीं है। पहले तो 104 पृष्ठों की हिन्दी भूमिका में 18 पृष्ठ में अपना ही वर्णन किया है। हमारा विश्वास है कि तीसरे भाग में जहां वर्तमान लेखकों और कवियों का उल्लेख होगा वहां मिश्र बन्धुओं ने अपना वर्णन कई पृष्ठों में अवश्य लिखा होगा। ऐसी अवस्था में भूमिका में अपने सम्बन्ध के 18 पृष्ठ लिखना कहां तक उचित है, यह पाठक ही विचारें। परन्तु यह तो विनोद है। इसमें जो चाहें लेखक लिख सकते हैं। पूरी पुस्तक को व्यंग्य द्वारा एक हल्के स्तर की रचना कहा गया है। भाषा व व्याकरण सम्बन्धी जो विचार मिश्र बन्धु विनोद में व्यक्त किये गये हैं, उन्हें तर्क देकर असंगत ठहराया गया है। सन्धि सम्बन्धी एक अंश यहां उद्धृत है—

"सन्धि के विषय में मिश्र बन्धुओं का कहना है कि सन्धि चाहे करो आप चाहे न करो आप। इस सम्बन्ध में भी आपकी बात सर्वांश नहीं मानी जा सकती। मिश्र बन्धुओं ने कहा है कि मनोरंजन लिखो चाहे मन उरंजन। पर हम तो लोगों को बहुधा मनोरंजन ही सुनते हैं। मूर्ख से मूर्ख भी 'मनोरंजन' बोलते हैं।......... तात्पर्य यह कि संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं वे सन्धि से बने हैं या नहीं, यह बन्धुओं को मालूम नहीं है और न वे इनके

जानने की चेष्टा करते हैं। वे जैसे शब्द पाते हैं वैसे ही बोलते और लिखते हैं।" इस तरह भाषा सम्बन्धी अनेक प्रश्न इस युग में चर्चा का विषय बने। इस प्रकार भाषा और साहित्य दोनों स्तरों पर हिन्दी की अभिवृद्धि हो रही थी और हिन्दी पत्रकारिता, राष्ट्रीय जीवन और साहित्यिक गतिविधियों को अभिव्यक्ति देकर विस्तार पा रही थी।

सरस्वती पत्रिका में उस युग में जिन साहित्य-सर्जकों की कविताएँ या गद्य रचनाएँ छपी वे आज भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना स्थान बनाए हुए हैं। हां, इस बात से कुछ लोग अनभिज्ञ जरूर हैं कि जो रचनाएँ उन्हें अब पुस्तक रूप में उपलब्ध हैं वे वस्तुत: पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही प्रकाश में आई थीं। सन् 1915 की सरस्वती में 'स्वर्गीय संगीत' शीर्षक कविता छपी थी, इसके रचयिता मैथिलीशरण गुप्त थे। उदाहरण हेतु कुछ पंक्तियां यहां प्रस्तुत हैं—

> 'यहीं प्रेम है, द्रोह भी है यहीं
> यहीं ज्ञान है, मोह भी है यहीं,
> यहीं पुण्य है, पाप भी है यहीं
> यहीं शान्ति है, ताप भी है यहीं,
> कहो, क्या तुम्हें आज स्वीकार है?
> मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।'

रामचरित उपाध्याय द्वारा रचित 'अङ्गद और रावण' कविता सरस्वती में प्रकाशित हुई। हिन्दी कविता में संवाद शैली का प्रयोग इस युग में होने लगा था, और इस कविता में अङ्गद की कही हुई पंक्तियों में एक सहज प्रवाहपूर्ण भाषा के दर्शन होते हैं—

> "कुशल से रहना यदि है तुम्हें, दनुज! तो फिर गर्व न कीजिए।
> शरण में गिरिए राम के, निबल के बल केवल राम हैं।।"

प्रेमचन्द जी की कहानी 'सौत' और सनेही जी की कविता 'कौशल्या का विलाप' सन् 1915 में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। उसकी भाषा का स्वरूप देख कर लगता है कि खड़ी बोली ने काव्य-भाषा का रूप इस युग में ले लिया था। कुछ पंक्तियाँ 'कौशल्या का विलाप' से उद्धृत हैं—

> "इस विषम विपद में ज्ञान जाता रहा है
> सदय विधि क्षमा दें, ज्ञान जाता रहा है।
> पर, विनय न मेरी हे विधाता! भुलाना
> —— ''ा वन में भी तू न भूखा सुलाना।।"

आप किसी भी देश की भाषा पर ध्यान दीजिए। उसमें खोज करने से विदेशी शब्दों की भरमार मिलेगी। लोग विदेशी शब्दों को इतनी शीघ्रता से अपना लेते हैं कि किसी का उन पर ध्यान ही नहीं जाता। दूसरी बात यह है कि मनुष्य अपनी भाषा को देश और काल के अनुसार खुद ही गढ़ लेता है। यही भाषा की परिवर्तनशीलता है।" पत्रकारिता के इस युग में जिसे साहित्य में हम द्विवेदी युग के नाम से प्रायः अभिहित करते हैं—साहित्य की विविध विधाओं का विकास होने लगा था, भाषा के संबंध में लेखकों की विचारशीलता देखने को मिलती है और इस सबमें अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि जीवन के सभी क्षेत्रों में सबधित साहित्य लिखा जा रहा था और प्रकाशित हो रहा था।

साहित्यिक पत्रकारिता की यात्रा में 'मतवाला' का विशिष्ट योगदान है। निराला जी की कविता इसके मुखपृष्ठ पर भी छपती थी और इसके अन्य पृष्ठों में भी। आचार्य शिवपूजन सहाय ने 'मतवाला' के सम्बन्ध में अपने संस्मरणों में पर्याप्त जानकारी दी है। बंगला के 'अवतार' पत्र से प्रेरणा लेकर हिन्दी के प्रेमियों और लेखकों ने हिन्दी का पत्र निकालने का संकल्प किया। इनमें प्रमुख थे मुन्शी नवजादिक लाल, पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी, बाबू शिवपूजन सहाय और महादेव प्रसाद सेठ। सेठ जी का अपना प्रेस भी था—बालकृष्ण प्रेस। शिवपूजन जी के निम्नलिखित कथन में 'मतवाला' के प्रकाशन की योजना की एक तस्वीर इस प्रकार उभरती है—"ता. 20 अगस्त 1923 ई. रविवार को बात पक्की हुई। ता. 21 सोमवार को मुंशी जी ने ही पत्र का नामकरण किया—'मतवाला'। मुंशी जी को दिन-रात इसी की धुन थी। नाम को सबने पसंद किया। अब कमेटी बैठी। विचार होने लगा—कौन क्या लिखेगा—पत्र में क्या रहेगा इत्यादि। —निराला जी ने कविता और समालोचना का भार लिया। मुंशी जी ने व्यंग्य-विनोद लिखना स्वीकार किया।.......मैं चुप था।.... ...मुझसे बार-बार पूछा गया, मैंने डरते-डरते कहा—मैं भी यथाशक्ति चेष्टा करूंगा। सेठ जी ने कहा—आप लीडर (अग्रलेख) लिखिएगा, प्रूफ देखियेगा, जो कुछ घटेगा सो भरियेगा।"

'मतवाला' पत्र ने हिन्दी साहित्य की खूब सेवा की, विधाओं और साहित्यरूपों को सामने लाने में और भाषा को समृद्ध करने की दिशा में भी। 'मतवाला' के मुख पृष्ठ पर दो पंक्तियां रहती थीं—

"अमिय-गरल, शशि-सीकर, रवि-कर, राग-विराग भरा प्याला।
जो साधक उनका प्यारा है वह 'मतवाला'॥"

छिपी छुरी नीचों के छल में,
देख दभ दुष्टों के दल में,
बढ़ आगे, हो सजग मेट तू क्षण में नाम निशान।
मिटो मोह माया की निद्रा गये रूप पहचान ॥
× × ×
आप आप कर अब न अमर को,
बना बाप मत वचक नर को,
अगर उतरना पार चाहता दिखा शक्ति बलवान।
मिटो मोह माया की निद्रा गये रूप पहचान ॥

यदि एक ओर साहित्यकारो का पारस्परिक सौमनस्य, और एक दूसरे की रचनाधर्मिता के प्रति विश्वास का स्वर इसमें दिखाई देता है, तो दूसरी ओर पैनी से पैनी समीक्षा और साहित्यिक विवाद की क्षमता का परिचय भी 'मतवाला' में मिलता है। सूर्यकान्त त्रिपाठी द्वारा लिखित 'कविवर सुमित्रानन्दन पंत' शीर्षक लेख में काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा के संबंध में निराला जी के विचार हैं तथा यह संकेत भी है कि इसे काव्य-भाषा का रूप देने में कवि पंत का महत्वपूर्ण योगदान है। निराला का कथन है, "" "हिन्दी में जब से खड़ी बोली की कविता का प्रचार हुआ तब से आज तक उसमें स्वाभाविक कवि का अभाव ही था। जो पौधा लगाया गया था उसे कुसुमित करने के लिए अब तक के कवियों को सीचने का श्रेय जरूर दिया जा सकता है, परन्तु वे उस पौधे के माली ही है, कुसुम नहीं। किसी पौधे में फूल एकाएक नहीं लग जाते, वे समय होने पर ही आते हैं। खड़ी बोली की जिस कविता का प्रचार किया गया था, जिसके प्रचारको और कवियों को कितनी ही गालिया खानी पड़ी थी, उसका स्वाभाविक कवि अब इतने दिनो बाद आया है, और हिन्दी का वह गौरव कुसुम श्री सुमित्रानन्दन पंत है। · पंत जी में कविजनोचित सभी गुण हैं। · जिस समय आप सस्वर कविता पढ़ने लगते हैं उस समय आप की सरल शब्दावली और कमनीय कण्ठ श्रोताओं के चित्त पर कविता की मूर्ति अंकित कर देते हैं।"

'मतवाला' के साहित्यिक गौरव की स्वीकृति में उस समय के अनेक लेखकों ने अपने वक्तव्य या काव्य-पंक्तियाँ दी, कुछेक उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं—

1 किशोरी लाल गोस्वामी —

"मतवाला कर डाला मुझको, 'मतवाला' यह आला है।
खूब निराला इसको, यह तो सब पत्रों में आला है ॥"

2 कविवर पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय—

"मतवाला बड़ी योग्यता से निकल रहा है। उसकी चुटकियाँ मार्मिक और चुटीली होती हैं। उसमें सहृदयता झलकती है। आलोचनाएँ कड़ी होती हैं, तथापि उनमें मर्यादा मर्यादित रहती है। ....परमात्मा उसको दीर्घजीवी करे।"

3 पं श्रीधर पाठक—

"... मुझे 'मतवाला' बहुत पसन्द आया और उसे बिना पढ़े नहीं छोड़ता।"

4 प. नाथूरामजी शंकर शर्मा 'शंकर' —

"शंकर की घन धार भटकता मस्त त्रिशूली।
जिसका नृत्य निहार, निरंकुशता सुधि भूली॥
कुचली कुटिला नीति, न्याय जिसने अपनाया।
रगड़ी कोढ़ कुरीति, सुयश का कोष कमाया॥
जिसकी उमग से चाह को, भर प्रमोद प्याला दिया।
उस मतवाला ने ग्राहको! प्रथम वर्ष पूरा किया॥"

इस प्रकार अनेक प्रकार की आर्थिक कठिनाइयाँ उठाकर अपने को पूर्णरूपेण साहित्य के प्रति अर्पित कर मतवाला-मण्डल के लेखकों व हिन्दी प्रेमियों ने यह पत्र निकाला, जिसने हिन्दी साहित्य के इतिहास में गौरवशाली पृष्ठ जोड़े हैं।

माधुरी पत्रिका ने भी साहित्यिक पत्रकारिता के मार्ग को प्रशस्त किया। माधुरी के अंकों को पढ़कर लगता है कि हिन्दी की साहित्यिक रचनाएं और हिन्दी के साहित्यकारों का जीवन परिचय जनता के सामने बड़े प्रभावी ढंग से सामने आ रहा था। साहित्य की एक प्रवहमान धारा के दर्शन हमें इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में होते हैं। माधुरी के प्रधान सपादक थे रूपनारायण पाण्डे। सस्थापक—स्व. श्री विष्णुनारायण भार्गव, अध्यक्ष श्री रामकुमार भार्गव, श्री तेजकुमार भार्गव, प्रकाशक—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ। फरवरी 1939 अंक की लेख सूची के अन्तर्गत निम्नलिखित कवियों और लेखकों के नाम हैं। गीत-लेखक—केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', गीत—लेखक—जैनेन्द्र कुमार। हिन्दी साहित्य चौपाई, लेखक—हीरानन्द वात्स्यायन, सपादक 'विशाल भारत', आचार्य के शिखर पर (कविता)—लेखक बाबू हरद्वार प्रसाद गुप्त बी. ए; नव वसन्त (कविता)—लेखक-श्री जानकी वल्लभ शास्त्री। इसी अंक की तरह अन्य पूर्ववर्ती और परवर्ती

अंकों में जो साहित्यिक रचनाएं छपी, उनमें हिन्दी साहित्य के इतिहास का विकास स्पष्ट दिखाई देता है। विषयों की विविधता, और भाषा के विकास की दृष्टि से माधुरी के अंक इस बात के प्रमाण हैं कि पुस्तकाकार रूप में रचनाएं बाद में सामने आईं परन्तु उनकी प्रतिष्ठा साहित्यिक पत्रिकाओं के द्वारा ही हुई। जनमानस में इन लेखकों और उनकी कृतियों ने अपना स्थान पत्रिकाओं के माध्यम से पहले ही बना लिया था।

'माधुरी' में छपा केदारनाथ मिश्र प्रभात का एक गीत भाषा-सौष्ठव और कोमल अनुभूतियों का परिचायक है—

कौनसी अज्ञात आभा आज लेकर प्राण मेरे।
रँग दिये ये गान मेरे।
गन्ध-मन्द-सजल पवन के साथ प्रात विषाद पीकर,
इन्द्रधनुषी तुहिन-छाया-गोद में पल मात्र जीकर,
बिखर, बिध जाते पथिक-से राह में अरमान मेरे।

'माधुरी' के जुलाई 1939 अंक में श्री सूर्य नारायण व्यास का लेख छपा है 'प्रसाद की स्मृति में'। लेख पढ़कर लगता है जैसे हम एक साहित्यिक युग से होकर गुजर रहे हैं। प्रसाद जी के निधन से शोकाकुल हिन्दी परिवार की व्यथा का अदांज निम्नलिखित पंक्तियों से सहज ही लगाया जा सकता है; "……… ……प्रसाद जी की वह बैठक हँसी के फव्वारे का ही केन्द्र थी। श्री विनोदशंकर व्यास, पंडित प्रवर श्री केशवप्रसाद जी मिश्र आदि शाम को वहां पहुंच जाते। ………कौन जानता था कि वह महान विभूति इतनी जल्दी उठ जायगी। आज भी उनका निर्मल हास्य उस बैठक की गली में गूँज रहा होगा, पर हाय, वह मस्त-गंभीर-हृष्ट-पुष्ट विद्वान आज वह नहीं होगा। विनोदमूर्ति, प्रतिभापुञ्ज, हिन्दी का वह ईश्वरीय 'प्रसाद' आज हमें निर्धन कर अमर पद को प्राप्त हो गया। … … … … … हिन्दी साहित्याकाश का वह सर्वोन्नत प्रकाशपुंज क्षोभ ही में अस्त हो गया। साहित्य गगन को तिमिरावृत कर गया। उसके अस्तित्व में हमारा गौरव था, उसकी 'कला' का पुनीत 'प्रसाद' अब हमें नहीं मिलेगा। हम कितने अभागे हैं?"

मई 1939 अंक में प. बालकृष्ण शर्मा नवीन की रचना है, दुर्द का सोच; रघुवीरसिंह का लेख है—कविवर प्रसाद जी के कुछ संस्मरण, अमृत लाल नागर की कहानी है—'तुलाराम शास्त्री', हरिऔध जी की कविता है, 'क्षणभंगुर जीवन।' हिन्दी साहित्य मर्जकों का एक पूरा नक्षत्र मंडल इस

पत्रिकाओं के द्वारा हिन्दी के पाठकों को देखने को मिला। हिन्दी की यह पत्रकारिता ऐसे वातावरण का निर्माण कर रही थी जहां साहित्य की धारा को प्रवहमान रहने के लिए नया मार्ग मिल रहा था और जहाँ राष्ट्रीय चेतना मुखरित होकर जनमानस को भक्त कर रही थी।

'हंस' का प्रकाशन हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता में एक मील का पत्थर तो है ही, प्रेमचन्द जी के तपस्वी और कर्मठ जीवन का परिचय देने वाला एक प्रामाणिक दस्तावेज भी है। 'हंस' के प्रकाशन का आरम्भ करने के पूर्व प्रेमचंद जी ने मुंशी दयानारायण निगम को लिखा था

"मैं फागुन यानी नए साल से एक हिन्दी रिसाला 'हंस' निकालने जा रहा हूं। 64 सुफहात का होगा और ज्यादातर अफसानों से ताल्लुक रखेगा। है तो हिमाकत ही, दर्दे सर बहुत और नफा कुछ भी नहीं, लेकिन हिमाकत करने को जी चाहता है। जिन्दगी हिमाकतों से गुजर गई, एक और सही।"

'हंस' के प्रकाशन में प्रेमचन्द जी ने बड़ी कठिनाइयों का सामना किया। वे राजनीतिक उथल-पुथल से जुड़े रहते थे, हंस के सम्पादकीय राजनीति के मुद्दों पर होते थे, इसी सिलसिले में प्रेस को एक हजार रुपये की जमानत देने का हुक्म हुआ। शिवरानी देवी भी विदेशी कपड़ों की दूकान पर धरना देते गिरफ्तार हुईं, उन्हें दो महीने की जेल भी हुई, उस समय प्रेमचन्द जी का साहस जवाब देने लगा था।

'हंस' के प्रवहमान प्रकाशन के लिए वे बराबर प्रयत्नशील रहे। बम्बई के सिने-निर्माताओं ने जब प्रेमचन्द जी को सेनारियो लिखने के लिए बुलाया तब उनकी दृष्टि में 'जागरण' और 'हंस' को चलाते रहने की ही बात घूम रही थी। अपने एक पत्र में उन्होंने जैनेन्द्र जी को लिखा —"बम्बई की एक कम्पनी मुझे बुला रही है। वेतन की बात नहीं, कांट्रैक्ट की बात है। आठ हजार रुपया साल। मैं उस अवस्था को पहुंच गया हूं जहां 'हां' के सिवाय और कोई उपाय नहीं रह गया।............मैं सोचता हूं क्यों न एक साल के लिए चला जाऊं। वहां साल-भर रहने के बाद कुछ ऐसा कांट्रैक्ट कर लूंगा कि मैं यहीं बैठे-बैठे तीन चार कहानियां लिख दिया करूं और चार पांच हजार रुपए मिल जाया करेंगे। उससे 'जागरण' और 'हंस' दोनों मजे में चलेंगे और पैसों का संकट कट जाएगा।" बम्बई रहकर प्रेमचन्द जी को उतना आर्थिक लाभ नहीं हो सका जो उनकी साहित्यिक गतिविधियों के लिए अपेक्षित था। अपनी आर्थिक उपलब्धि की चर्चा प्रेमचन्द जी ने अपने एक

पत्र में ही जैनेन्द्र जी से इस प्रकार की है—"बम्बई से क्या लाया? कुल 6300 रुपए मिले। इसमें 1500 रुपए लड़कों ने लिए, 400 रुपए लड़की ने, 500 रुपए प्रेस ने। दस महीने में बंबई का खर्च बड़ी किफायत से भी 2500 से कम न हो सका। वहां से कुल 1400 रुपए लेकर अपना-सा मुँह लिये चले आए। अब ये यहाँ प्रेस चलाने में खर्च हो जायेंगे।" प्रेमचन्द जी के जीवन पर्यन्त प्रेस और पत्र के लिए संघर्ष करना पड़ा और इस मेहनत के बावजूद 'जागरण' बन्द हुआ, फिर 'हंस' को भारतीय साहित्य परिषद का मुखपत्र बनाया गया और प्रेमचन्दजी को श्री मुंशी के साथ इसके सह-सम्पादक रूप में काम करना पड़ा।

'हंस' की संघर्ष-यात्रा और प्रेमचन्द की संघर्ष-यात्रा एक दूसरे का पर्याय है। भारतीय परिषद ने भी पत्र को बंद करने का निश्चय किया। बात यह हुई कि सेठ गोविन्ददास के नाटक पर सरकार ने आपत्ति की थी और एक हजार रुपए की जमानत मांगी थी। प्रेमचन्द जी ने गांधी जी को इस संबंध में एक चिट्ठी भेजी, गांधी जी ने निर्णय यह दिया कि "यदि प्रेमचंद 'हंस' को प्रकाशित करना चाहें, तो करें।" इसके बाद प्रेमचन्द ने 'हंस' को अपने हाथों में लिया और जमानत भर दी गई। उन्होंने शिवरानी जी से कहा "रानी, तुम 'हंस' की जमानत जमा करा दो, चाहे मैं रहूं या न रहूं 'हंस' चलेगा। यदि मैं जिन्दा रहा तो सब प्रबन्ध कर दूँगा। यदि मैं चल दिया, तो यह मेरी यादगार होगी।" यह सारा वार्तालाप उन दिनों का है जब प्रेमचन्द जी जीवन के अंतिम दिनों में जलोदर से रुग्ण थे, और इसी बीमारी में कुछ दिन पश्चात् वे दिवंगत हुए।

प्रेमचन्द जी ने उस युग के साहित्यिक व सामाजिक व राजनीति संबंधी सभी पत्रों को अपना भरपूर योगदान दिया था और ऐसा लगता है कि जैसे वे सभी पत्रिकाएँ जिस साहित्यिक माहौल की सृष्टि कर रही थी, प्रेमचन्द उसके अभिन्न अंग थे, लेखक के रूप में भी और सम्पादक के रूप में भी।

इन्हीं दिनों 'चांद' पत्रिका भी निकलती थी, इसका एक कहानी-विशेषांक निकला जिसका संपादन किया प्रेमचन्द जी ने। 'चांद' में नवम्बर 1925 से 1926 तक प्रेमचन्द जी का उपन्यास 'निर्मला' धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ।

पत्रकारिता के माध्यम से वस्तुतः हिन्दी की एक से एक सशक्त रचनाएं सामने आईं, परन्तु इस साहित्य-सर्जनार को सामने लाने में हिन्दी के लेखकों को अनेक विपत्तियां झेलनी पड़ीं, प्रेमचन्द की साहित्य-साधना

और लेखन-धर्मिता तो किन मकड़ों को पार कर चलती रही, यह उनके निम्नलिखित कथन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—"प्रेस मुझे इस व परेशान कर रहा है कि तंग आ गया हूं, वह बुरा वक्त था जब मेरे सर यह सौदाए-खाम समाया। ...... 'दरअसल मैंने यह झंझट मोल ले अपनी जान आफत में फँसाई। नहीं तो मेरे खाने भर को बहुत काफी। इस तरद्दुद में लिटरेरी काम भी नहीं होता।"

वस्तुत: पत्रकारिता में संघर्षपूर्ण राहों पर चलकर ही अनेक सुधी साहित्यकार, हिन्दी संसार में कीर्ति के उत्तुंग शिखरों पर पहुंचे; न जाने कितनी महान कृतियाँ, पुस्तकों या संकलनों में आने से पहले इन साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आईं। 'हंस' के सितंबर 1936 अंक में प्रेमचन्द का महत्वपूर्ण लेख 'महाजनी सभ्यता' छपा था, अक्तूबर 1936 में प्रेमचन्द की मृत्यु हुई, ऐसा लगता है जैसे साहित्य के स्वस्थ और सशक्त मानदंडों की वसीयत प्रेमचन्द हिन्दी की लेखन-धर्मिता को सौंप गए और 'हंस' के माध्यम से ये महत्वपूर्ण रचनाएं हिन्दी संसार को प्राप्त हुईं।

विशाल भारत ने हिन्दी की साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1933 में तो 'विशाल भारत' ने साहित्य की दो विधाओं पर स्वतंत्र अंक ही निकाल दिए, जनवरी में कहानी अंक और जुलाई में यात्रा अंक। इसके पहले कला अंक, और साहित्यांक प्रकाशित हो चुके थे। इसमें हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएं बराबर छपती रहीं, कुछ नाम व रचनाओं के शीर्षक हैं—'बुद्धधर्म क्या है?'—लेखक त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, 'विधवा' (कविता)—रामधारी सिंह 'दिनकर' बी. ए., 'जीवन' (कविता)— श्री बालकृष्ण राव, नंबर पड़ गई थी (कहानी),–सत्यकाम विद्यालंकार। मान्य लेखकों और कवियों की रचनाएं सन् 1928 से बराबर विशाल भारत में छपती रहीं। भाषा का सहज प्रवाह इन रचनाओं में देखने को मिलता है। श्री बालकृष्णराव की कविता 'जीवन' की कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत हैं —

"मधु पाकर मधुमय होंगे,"
मधुकर कहते मनमारे,
"मधुमय हो मधु पाओगे,"
कह रहे कुसुमगण सारे।

×

मिलने का मार्ग मिलेगा
विच्छेद सहन करने मे,
जलने मे शीतलता का,
पद जीवन का मरने मे ।

विषय की दृष्टि से भी 'विशाल भारत' मे छपी रचनाओ मे बडी विविधता थी । इसके एक स्तंभ-साहित्य-सेवी और साहित्य चर्चा मे हमें उस समय के साहित्यिक परिवेश के दर्शन होते हैं, चतुर्वेदी जी लिखते हैं,—"हमारे साहित्य में छोटे-बडे दीपक, लालटेन और कन्दीलो की कमी नही है, पर डायनैमो (बिजली का केन्द्रीय यन्त्र), जहाँ से प्रकाश चारो ओर को फैलाया जाता है, एक भी नहीं है । उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि जिस कार्य को द्विवेदी जी करते थे, और जिसे आगे चलकर श्रद्धेय गणेश जी तथा स्वर्गीय पद्मसिंह जी ने अपने ऊपर उठा लिया था, उसे आजकल कोई नही कर रहा ।" इसी अक मे सम्पादकीय विचार के अतर्गत एक टिप्पणी है, 'सम्पादकों पर अत्याचार' । इसमे सपादक की उलझनों से भरी स्थितियो का रोचक वर्णन है; रोचक इसलिए कि लिखने की शैली सधी हुई है, पर यह सारा वर्णन सम्पादक की जिन्दगी की परेशानियो को बडे प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है; कुछ अश इस प्रकार है,—"अब वक्त आ गया है, जब कुछ भले आदमियो को गोरक्षा-समिति की तरह सम्पादक-रक्षा-समिति बनानी चाहिए। प्रत्येक सम्पादक को, खास तौर से हिन्दी के सपादकों को इस बात का कटु अनुभव होगा कि किस प्रकार उनके समय का दुरुपयोग किया जाता है ।...... ......दिन भर का हारा-थका बेचारा सपादक बैठा है, उसे विश्राम की जरूरत है, पर आने वालो को इससे क्या गरज ? उन्हे तो अपने काम से काम । पहला आने वाला आवाज लगाता है—"सम्पादक जी हैं क्या ?" झुंझलाकर यही कहने को तबीयत चाहती है —

अफसोस है कि जिन्दा हू, देना पडेगा वक्त,
क्या मुख्तसिर जवाब यह होता कि मर गया ।"

पर ऊपरी शिष्टता के साथ उसमे कहना पडता है, "आइए, पधारिये । ......
....मजाक की बात नही है । अब सचमुच समय आ गया है जब कि सम्पादक-रक्षा-समिति की तुरत स्थापना की जानी चाहिए ।"

'विशाल भारत' एक लंबी अवधि तक साहित्य की सेवा मे और समाज-सुधार की दिशा मे लगा रहा । किसी भी अक को उठाकर देखें तो साहित्य के नये-नये रूप देने और ज्ञान-विज्ञान की नई से नई गतिविधि से परिचित

बनाने में 'विशाल भारत' ने एक विशिष्ट योगदान दिया है।

'विशाल भारत' के द्वारा हिन्दी साहित्य से संबंधित कई प्रकार के विवाद भी उठाए गए, निराला जी का एक लेख छपा था 'वर्तमान धर्म'। इस लेख पर प्रमुख साहित्यकारों की सम्मतियां मांगी गई थी, विदेशी साहित्य की अनूदित रचनाएं भी इसमें छपती थीं। हिन्दी पत्रकारिता के सम्बन्ध में अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, गर्दे जी आदि के संस्मरण भी इसमें छपे थे। हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि और राष्ट्रीय भावनाओं के प्रसार में 'विशाल भारत' का योगदान अप्रतिम है। इस सारी साधना के पीछे इसके संपादक प. बनारसी दास चतुर्वेदी के ऊंचे आदर्शों की शक्ति थी।

'नया समाज' में उन्होंने पत्रकार और साहित्यकार की जीवन-पद्धति का स्वरूप इन शब्दों में स्पष्ट किया है—दोनों अभिलाषाओं की पूर्ति साथ-साथ नहीं हो सकती—बैंक में हमारे नाम मोटी रकम भी जमा हो जाये और कण्ठावरोध भी न हो। कबीर को पत्रकारिता का कुछ अनुभव नहीं था, पर उन्होंने एक बात बड़े पते की कही, जो पत्रकारों के लिए आज भी बड़े काम की है—'जो खायेगा चूपड़ी, सो बहुत करेगा पाप।' आज के युग में और आगे चलकर भी, जब तक कि वर्गहीन समाज कायम नहीं हो जाता""""" सजीव साहित्यकों का जीवन संघर्षमय ही रहेगा। यह ऐसा युद्ध है, जिसमें विश्राम नहीं। अन्यायों, अत्याचारों और अनाचारों के विरुद्ध डटकर संग्राम करना""""""तो उसकी जन्मपत्री में लिखा गया है।"

पत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक साहित्यिक विवाद सामने आए, इनमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'भारतमित्र' के संपादक बालमुकुन्द गुप्त का व्याकरण सम्बन्धी विवाद तो पूरे हिन्दी जगत में छा गया था। 'हिन्दी बंगवासी', 'वैश्योपकारक', 'समालोचक' आदि पत्रों में अनेक विद्वानों ने इस बहस में जीवन्त भाग लिया। भाषा और व्याकरण सम्बन्धी इस विवाद में व्यंग्यपूर्ण आलोचना पद्धति सामने आई। गुप्त जी ने 'आत्माराम' के नाम से 'भारतमित्र' में लिखा, 'हिन्दी बंगवासी' में पं. गोविन्द नारायण मिश्र ने 'आत्माराम की टें-टें' शीर्षक में द्विवेदी का समर्थन किया। स्वयं द्विवेदी जी ने 'कल्लू अल्हइत' शीर्षक से अपने क्षोभ को व्यक्त करते हुए 'आल्हा' 'सरस्वती' में प्रकाशित की। प. चन्द्रधर शर्मा, प. माधव प्रसाद मिश्र ने गुप्त जी के मत की पुष्टि में अपने विचार बिन्दु दिए थे। एक सार्थक बहस की परंपरा जो साहित्य के अनेक पहलुओं को उभारने वाली थी, हिन्दी जगत में प्रतिष्ठित हुई।

हिन्दी जगत में अनेक पत्र साहित्य की धारा को नये-नये आयाम देने और राष्ट्रीय स्वर को उभारने में संलग्न रहे। कभी-कभी उनके नामों को पढ़कर लगता है कि वे केवल जाति के या धर्म के आधार पर ही निकाले गये हैं, परंतु वस्तु स्थिति यह थी कि जाति या धर्म के नामों से संबंधित ये पत्र समाज की कुरीतियों से टक्कर लेते रहे, जन-जागरण का शंख फूंककर विदेशी सत्ता से जूझते रहे और उत्कृष्ट सामयिक रचनाएं देते रहे। इन पत्रों में 'हिन्दू पंच' नामक साप्ताहिक का 'बलिदान अंक' हमारे स्वातंत्र्य संग्राम के इतिहास का दस्तावेज है। इस अंक के मुखपृष्ठ पर 'रश्मिदेन्द्र' की कविता छपी थी, 'बलिदानी वीर'; इसके संपादकीय में ओजस्वी उद्बोधन था, "—बिना आत्म बलिदान किए स्वतंत्रता कभी न आयेगी ·· 'स्वतंत्रता ऐसी है ही नहीं जो आसानी से मिल जाय, और आसानी से मिली हुई स्वतंत्रता कभी टिकाऊ नहीं हो सकती। ······जलियानवाला बाग में अगर तुमने अपनी संकुचित पीठों पर गोलियां खाई थीं तो अबकी अपनी विशाल छातियों पर दानवी गोलियों का स्वागत करो।······ · इस कर्त्तव्य पालन करने के लिये तुम्हें समस्त यातनायें सहन करते हुए चुपचाप बलि चढ़ जाना होगा और इसका पुरस्कार होगा—स्वतंत्रता।"

'सेनापति' साप्ताहिक में वीर रस की कविताओं और लेखों को बहुलता से छापा गया। वीर रस ही इसका प्रमुख स्वर था। पं. केदारनाथ मिश्र की कविता 'असि का आवाहन'' लाला भगवानदीन की कविता 'तलवार की तारीफ' और दिनकर की 'मातृ-भूमि वंदना' जैसी कविता इसके राष्ट्रीय स्वर की परिचायक है। पं. मोहन लाल महतो वियोगी की कविता 'मत मुरली बजाइए' में भी कृष्ण से मुरली के स्थान पर पांचजन्य बजाने का आग्रह है। कविवर प्रसाद ने इसके लिए शुभकामना स्वरूप ये पंक्तियाँ दी थीं

> "हाथों में हो शक्ति वर्म में नव कौशल हो।
> मन में भगवद्भक्ति सत्य का अतुलित बल हो।।
> जीवन में संग्राम करे हँस हँस कर निर्भय।
> निश्छल सेनापति की है निश्चय जय।।"

'सरोज' नामक मासिक पत्र पूर्णरूप से साहित्यिक पत्र ही था, प्रथम सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा गया कि, " ·· ··· मातृभाषा की सेवा करने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को है और होना चाहिए। हम 'सरोज' द्वारा उसी अपने जन्मसिद्ध अधिकार का उपयोग अपनी इच्छा और तुच्छ क्षमता के अनुसार करना चाहते हैं।" ···· नवीन हिन्दी शिल्पियों की प्रतिभा को

प्रश्रय प्रदान कर उन्हें मातृ-भाषा की सेवा के लिए सतत उत्साहित करते रहना 'सरोज' अपना परम कर्तव्य समझेगा.........।" इसके लेखकों में हिन्दी के अनेक ऐसे सृजन-धर्मियों के नाम हैं जो उस समय साहित्य साधना में संलग्न थे और आज साहित्य-निर्माता के रूप में यशस्वी हुए हैं। इनमें से कुछ नाम हैं, हरिऔध, बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रभात, गोपाल शरण सिंह, शांति प्रिय द्विवेदी, हितैषी, उग्र, निराला, मोहनलाल महतो 'वियोगी'। निराला की मर्मस्पर्शी कविता, 'सरोज स्मृति' इसी में प्रकाशित हुई थी। 'सरोज' के संपादक मुंशी नवजादिक लाल और रामप्रसाद पाण्डेय ने हिन्दी के साहित्य-कारों का खूब सहयोग लिया और साहित्य की समृद्धि में खूब योगदान दिया।

इसी तरह बहुत सी पत्र-पत्रिकाएं राष्ट्रीय चेतना को स्वर देती रहीं। 'समालोचक' पत्र ने देश की राष्ट्रीय गतिविधियों और साहित्य-सर्जना के क्षेत्र में अपना योगदान दिया। इसके संपादक थे गोपालराम गहमरी परंतु पं चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इसके संपादन में पूर्णरूपेण लगे रहे। 'त्यागभूमि' पत्रिका ने पंडित हरिभाऊ उपाध्याय के संपादन में हिन्दी साहित्य की बहुत सेवा की। इसके लेखकों में सोहनलाल द्विवेदी, 'नवीन', महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद आदि के नाम आते हैं। साहित्यिक पत्रकारिता के क्षितिज पर 'त्यागभूमि' का योगदान विशिष्ट है।

हिन्दी पत्रकारिता प्रारंभ से ही कांटों की राहों से गुजरी। एक ओर यह विदेशी शासन से टक्कर लेकर अपनी संघर्ष-क्षमता का परिचय देती रही तो दूसरी ओर साहित्य के विविध रूपों को सामने लाने के प्रयासों में भी संलग्न रही। राष्ट्रीय चेतना की मिट्टी में जो साहित्य पनपा, वह हमारी राष्ट्रीय पूंजी है और यह सारी पूंजी हिन्दी की उन पत्र-पत्रिकाओं में निहित है जिनको प्रकाशित करने और चलाने में हिन्दी के पत्रकारों, सम्पादकों और साहित्यकारों ने अपना तन-मन-धन न्योछावर किया। अपने स्वेद-बिन्दुओं से इन यशस्वी पत्रकारों ने जिस स्वतन्त्रता के अंकुर को सींचा, वही आज स्वतंत्र देश के रूप में एक विशाल वृक्ष की तरह हमारे सामने है।

नियतकालीन-अनियतकालीन साहित्यिक
पत्रिकाएं : संपादकीय दृष्टि

प्रथम प्रयास कर उस मातृ-भाषा की सेवा के लिए सतत उत्साहित करते रहना 'सरोज' अपना परम कर्तव्य समझेगा………।" इसके लेखकों में हिन्दी के अनेक ऐसे सुमन-धर्मियों के नाम हैं जो उस समय साहित्य साधना में संलग्न थे और आज साहित्य-निर्माता के रूप में यशस्वी हुए हैं। इनमें से कुछ नाम हैं, हरिऔध बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रसाद, गोपाल शरण सिंह, शांतिप्रिय द्विवेदी, हितैषी, उग्र, निराला, मोहनलाल महतो 'वियोगी'। निराला की मर्मस्पर्शी कविता, 'सरोज स्मृति' इसी में प्रकाशित हुई थी। 'सरोज' के सम्पादक मुंशी नवजादिक लाल और रामप्रसाद पाण्डेय ने हिन्दी के साहित्यकारों का खूब सहयोग लिया और साहित्य की समृद्धि में खूब योगदान दिया।

इसी तरह बहुत सी पत्र-पत्रिकाएं राष्ट्रीय चेतना को स्वर देती रहीं। 'समालोचक' पत्र ने देश की राष्ट्रीय गतिविधियों और साहित्य-सर्जना के क्षेत्र में अपना योगदान दिया। इसके सम्पादक थे गोपालराम गहमरी परन्तु चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इसके संपादन में पूर्णरूपेण लगे रहे। 'त्यागभूमि' पत्रिका ने पंडित हरिभाऊ उपाध्याय के संपादन में हिन्दी साहित्य की बहुत सेवा की। इसके लेखकों में सोहनलाल द्विवेदी, 'नवीन', महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद आदि के नाम आते हैं। साहित्यिक पत्रकारिता के क्षितिज पर 'त्यागभूमि' का योगदान विशिष्ट है।

हिन्दी पत्रकारिता प्रारंभ से ही कांटों की राहों से गुजरी। एक ओर यह विदेशी शासन से टकरा कर अपनी संघर्ष-क्षमता का परिचय देती रही तो दूसरी ओर साहित्य के विविध रूपों को सामने लाने के प्रयासों में भी संलग्न रही। राष्ट्रीय चेतना की मिट्टी में जो साहित्य पनपा, वह हमारी राष्ट्रीय पूंजी है और यह सारी पूंजी हिन्दी की उन पत्र-पत्रिकाओं में निहित है जिनको प्रकाशित करने और चलाने में हिन्दी के पत्रकारों, सम्पादकों और साहित्यकारों ने अपना तन-मन-धन न्यौछावर किया। अपने स्वेद-बिन्दुओं से इन यशस्वी पत्रकारों ने जिस स्वतन्त्रता के अंकुर को सींचा, वही आज स्वतंत्र देश के रूप में एक विशाल वृक्ष की तरह हमारे सामने है।

नियतकालीन-अनियतकालीन साहित्यिक
पत्रिकाएं : संपादकीय दृष्टि

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में नियतकालीन, अनियतकालीन और लघु पत्रिकाओं ने साहित्य की अनेक धाराओं को प्रतिष्ठित किया, साहित्यिक आन्दोलनों के द्वारा नई दृष्टि दी, नये साहित्यिक प्रतिमानों को स्थापित किया और नये विशिष्ट हस्ताक्षरों को सामने लाने का भागीरथ प्रयत्न किया। इन पत्रिकाओं के संपादकों की साधना भी संघर्ष की कहानी है, क्योंकि अपनी पूँजी लगाकर साहित्यिक पत्रिकाओं को निकालना और चलाते रहना एक बहुत बड़े जोखिम का काम था। वहां आर्थिक लाभ की गुंजाइश तो है ही नहीं; इसके अतिरिक्त अपने समय और शक्ति को पूरी तरह अर्पित करने पर ही ये पत्रिकाएं—भले ही वे अल्पजीवी रहीं हों या दीर्घजीवी—निकल सकीं। इन पत्रिकाओं का वैशिष्ट्य यही था कि इन्होंने अपनी आस्था और निष्ठा के साथ साहित्य-आंदोलनों को और अपनी साहित्यिक मान्यताओं को अभिव्यक्ति दी।

'अज्ञेय' जी के 'प्रतीक' ने हिन्दी जगत को ऐसी साहित्यिक रचनाएं दीं जो साहित्य के इतिहास को नया मोड़ दे रही थीं। नया भाव बोध, नया शिल्प विधान, नये बिम्ब, भाषा में नई ताजगी 'प्रतीक' में प्रकाशित रचनाओं में देखने को मिलती रहीं, और इसी साहित्यिक परिवेश की एक महत्वपूर्ण घटना थी—तार-सप्तकों का प्रकाशन।

'नयी कविता' के प्रकाशन ने भी एक नये भाव-बोध और नये शिल्प-वैशिष्ट्य को सामने लाने में अपना योगदान दिया। उन्नीस सौ चौवन में प्रकाशित इसके प्रथम अंक में इसे 'नयी कविता' साहित्यकारों का सहकारी प्रयास बताया गया है। इसके संपादक थे डा. जगदीश गुप्त और राम स्वरूप चतुर्वेदी। अंक 3 के संपादक थे - डा. जगदीश गुप्त और विजयदेव नारायण साही। 'नयी कविता' को एक नये आंदोलन के रूप में इसी पत्रिका ने चलाया। अंक 2 में कविवर सुमित्रानंदन पंत ने नयी कविता का परिचय देते हुए लिखा, 'नयी कविता' अपनी शैली तथा रूप-विधान में जहां अधिक मौलिक, वैचित्र्यपूर्ण तथा वैयक्तिक हो गई है, वहां अपनी भावना में अधिक रागात्मक तथा मानववादी बन गई है।"

'निकष' के प्रकाशन ने भी हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ नया दिया। निकष-1 और 2 में साहित्य की अनेक विधाओं की प्रभावपूर्ण रचनाएं प्रकाशित हुईं।

'सचेतना' का प्रकाशन डा. महीपसिंह की साहित्य साधना का एक जीता जागता प्रमाण है। 'निवेश' के माध्यम से धर्मेन्द्र गुप्त ने साहित्य के ठोस

मानदण्डों की अभिव्यक्ति दी।

'कल्पना' की साहित्यिक देन अप्रतिम थी, और इसे चलाते रहने में बद्री विशाल पित्ती ने अपनी साहित्यिक निष्ठा को साकार किया। राष्ट्रवाणी, नई धारा, अजन्ता, प्रेरणा, नव निर्माण, विश्व भारती, सुमित्रा, मधुमती, माध्यम, नया समाज, आलोचना, ज्ञानोदय, वातायन, लहर, बिंदु, समारोह, मधु-माधवी जैसी पत्रिकाओं ने हिन्दी साहित्य की विधाओं को अधिक वैविध्य दिया। हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुतः इन्हीं नियत और अनियत कालीन पत्रिकाओं द्वारा ही निर्मित हुआ है।

साहित्यिक पत्रिकाओं को निकालने में हर संपादक और प्रकाशक की अपनी दृष्टि थी, अपनी विचारणा थी। साहित्यिक पत्रिकाओं की [illegible] आंशिक सूची अगले परिच्छेद में दी जा रही है, जो इस बात का प्रमाण है कि कठिनाइयों के बावजूद भी सृजनधर्मियों के त्याग और कर्मठता से ये पत्रिकाएं निकलती रहीं। इनमें से कुछेक पत्रिकाओं के सम्पादकीय वक्तव्य के अंश उद्धृत किये जा रहे हैं, ये अंश यदि एक ओर पत्रिका प्रकाशन की कठिनाइयों का चित्र प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर इन पत्रिकाओं के साहित्यिक सर्जना संबंधी अनेक दृष्टि-बिन्दु भी सामने आते हैं। ये अंश निम्नलिखित हैं—

कविता 1966

त्रैमासिकी

"कविता-पत्रिका निकालना दुष्कर कार्य है। [illegible] हुए भी हम इस दुष्कर कार्य को करने के लिए कटिबद्ध हैं। [illegible] रूप में यह दूसरा अंक प्रस्तुत है। . . . 'कविता' के प्रत्येक अंक में हमने कुछ [illegible] समकालीन रचनाकारों को प्रस्तुत किया है। इस अंक में भी [illegible] समकालीन रचनाकार [illegible] अपनी समकालीन कविताओं और नई [illegible] के [illegible] हो रहे हैं। इन [illegible] का स्वागत करते हुए हम [illegible] हैं।

संपादक [illegible]

[illegible] मार्च 1967

[illegible]

[illegible]

मैंने इस प्रक्रिया मे महसूस किया कि रचनाकार सारी सीमाओं से आगे निकल गया है। अब व्यक्त करने के पहले 'स्ट्रक्चर' बनाने पर नहीं सोचा जाता। व्यक्त कर दिया जाता है। व्यक्त कर देना 'विस्फोट'' के अर्थों मे कहने वाला, प्रतिक्रियावादियों मे अलग है, यह अलगाव ही 'दिशा' को प्रकाशित करने का कदम''' मेरे अर्थों में 'प्रक्रिया पर' है।

सपादक अजनी कुमार सिन्हा

अकथ : वर्ष 1, अक 1 जनवरी 1968

प्रस्तुत

'अकथ' का प्रवेशाक आपके हाथों मे है, अपनी तमाम खूबियों और खामियों के साथ। इस पत्र के नीति-पक्ष को लेकर कोई बहुत बडा दावा करने की स्थिति मे हम नहीं हैं, न होना चाहते है। घोषणाओं के 'आडम्बर' और उसकी व्यर्थता से इस देश का आदमी पूरी तरह वाकिफ हो चुका है। ....'अकथ' के द्वारा हमारा प्रयास रहेगा कि हिन्दी भाषा, साहित्य और इतिहास पर पड़े हुए सुनहरे, भ्रामक परदों को उठाया जाए ताकि लेखन का सही मच स्पष्ट हो सके।............अपवित्र गठबन्धनों को तोड कर 'पराधीन' प्रतिभा को आजादी दिलानी है, तभी 'अकथ' कहा जाएगा। 'अकथ' को कहने के इस प्रयत्न में हम रचनात्मक और वैचारिक स्तर पर हर सजग प्रतिभा के सहयोग के आकांक्षी है।

सपादक मण्डल : हरिदत्त, रमा शकर जैतली, मणिमधुकर, आदिल मसूरी, रचना मणि

'अकथ' वर्ष 1, अंक 1 जनवरी 1968

कालध्वनि : अक 1, मार्च 1968

सम्पादकीय

'कालध्वनि' के प्रकाशन का उद्देश्य अन्तराल मे ध्वनित होने वाली उन भारतीय प्रवृत्तियों एवं विचारो की खोज करना एवम् बढ़ावा देना है, जिनके बगैर हम सभी दिशाहीन, नेतृत्वविहीन होकर अपने यथार्थ एवम् 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' तथा 'सर्व भवन्तु सुखिन' जैसे चिन्तन एवम् दर्शन को भूल बैठे हैं, हम उस कगार पर आकर खड़े हैं—जहाँ से हमारे सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक एव राष्ट्रीय आजादी के 'मापदण्डों' एवम् 'मान्यताओं'

मैंने इस प्रक्रिया में महसूस किया कि रचनाकार सारी सीमाओं से आगे निकल गया है। अब व्यक्त करने के पहले 'स्ट्रक्चर' बनाने पर नहीं सोचा जाता। व्यक्त कर दिया जाता है। व्यक्त कर देना 'विस्फोट' के अर्थों में बहने वाला, प्रतिक्रियावादियों से अलग है, यह अलगाव ही 'दिशा' को प्रकाशित करने का कदम''' मेरे अर्थों में 'प्रक्रिया पर' है।

संपादक अजनी कुमार सिन्हा

अकथ वर्ष 1, अंक 1 जनवरी 1968

प्रस्तुत

'अकथ' का प्रवेशांक आपके हाथों मे है, अपनी तमाम त्रुटियों और खामियों के साथ। इस पत्र के नीति-पक्ष को लेकर कोई बहुत बड़ा दावा करने की स्थिति मे हम नही हैं, न होना चाहते हैं। घोषणाओं के 'आडम्बर' और उसकी व्यर्थता से इस देश का आदमी पूरी तरह वाकिफ हो चुका है। ....'अकथ' के द्वारा हमारा प्रयास रहेगा कि हिन्दी भाषा, साहित्य और इतिहास पर पड़े हुए सुनहरे, भ्रामक परदों को उठाया जाए ताकि लेखन का सही अर्थ स्पष्ट हो सके।.......... अपवित्र गठबन्धनों को तोड़ कर 'पराधीन प्रतिभा' को आजादी दिलानी है, तभी 'अकथ' कहा जाएगा। 'अकथ' को कहने के इस प्रयत्न मे हम रचनात्मक और वैचारिक स्तर पर हर सजग प्रतिभा के सहयोग के आकांक्षी हैं।

संपादक मण्डल हरिदत्त, रमा शंकर जैतली, मणिमधुकर, आदिल मसूरी, रचना मणि
अकथ : वर्ष 1, अंक 1 जनवरी 1968

कालध्वनि . अंक 1, मार्च 1968

सम्पादकीय

'कालध्वनि' के प्रकाशन का उद्देश्य अन्तराल में ध्वनित होने वाली उन भारतीय प्रवृत्तियों एवं विचारों की खोज करना एवम् बढ़ावा देना है, जिसके बगैर हम सभी दिशाहीन, नेतृत्वविहीन होकर अपने यथार्थ एवम् 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिन' जैसे चिन्तन एवम् दर्शन को भूल बैठे हैं, इस उस कगार पर आकर खड़े है—जहाँ से हमारे सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय आजादी के 'मापदण्डों' एवम् 'मान्यताओं'

पर भारतीय राष्ट्र के गुर्राते दुश्मनों, पक्षपातियों एवम् विदेशी पैसों पर पलने वाले सतत, पीले एवम् सफेद एजेन्टों द्वारा लगातार चोटें दी जा रही हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र पर छायी यह दिशाहीनता एवम् खतरे उस 'ब्लैकमेन' के समान है—जहाँ हमारे अस्तित्व का बोध देने वाला कोई भी नहीं होता और हमारे सभी प्रयास और सभी उछलकूद बाद में निरर्थक साबित होते हैं।

संपादक कृपाशंकर मिश्र

सनीचर : अगस्त 1968

सनीचरीय

साढ़े सात वर्ष के मध्यान्तर के बाद न जाने कैसे किसने छु दिया कि 'सनीचर' के पुन प्रकाशन की बात दृढ़ संकल्पों के साथ योजनाबद्ध हो गयी।

इस बीच साहित्य-जगत में न जाने क्या कुछ घट गया, बढ़ गया। न जाने (सहसा याद नहीं) कितने साहित्यकार हमारे बीच से उठ चले गये। न जाने (याद है सहसा) कितने जुड़ गये। जो उठ गये, वे हमें साहित्य दे गये।""""" जो भी अक्षत वे हमें दे गये, दे गये—जूझ कर, तप कर।"" " """उन सब प्यारी आत्माओं को 'सनीचर' का प्रणाम।

प्रकाशक-सम्पादक ललित कुमार शर्मा 'ललित'

मधुमती . अप्रैल 1979

सम्पादकीय

"एक बार स्व बालकृष्ण राव ने कहा था कि "हिन्दी में साहित्यिक पत्रिकाओं का निकलते रहना एक बहुत बड़ी चुनौती है और जब हम उन तमाम पत्रिकाओं की याद करते हैं, जो बड़ी सामर्थ्य के साथ निकलती रहीं और फिर बन्द होती गई।" ऐसी अनेक पत्रिकाओं की याद से एक दर्द महसूस होता है। साहित्यिक पत्रिकाओं में कई तरह की प्रकाशन योजना चलीं। कुछ नियतकालीन, कुछ अनियतकालीन। कुछ को साहित्यकार बंधु अपने श्रम और त्याग से चलाते रहे, कुछेक संस्थाओं से निकलती रहीं। कुछ पत्रिकाएँ कुछ दिन चलीं फिर बंद होने के थोड़े या ज्यादा अंतराल के बाद फिर निकलीं, कुछ अभी भी निकल रही हैं। ऐसी पत्रिकाएँ चाहे थोड़े समय के लिए ही निकल पाई हों या वे अपनी प्रवहमानता बनाकर अभी भी निकल रही हैं, उनका एक 'इम्पैक्ट' साहित्य पर पड़ा जरूर। मुझे 'बिन्दु', 'वातायन',

'लहर', 'भूमिका' या 'पहल' जैसी पत्रिकाओं के प्रभाव की अनुभूति है, जिन्हें साहित्यकारों ने सिर्फ अपनी निष्ठा के बल पर चलाया है। संस्थाओं से निकलने और बंद होने वाली पत्रिकाओं में 'ज्ञानोदय' या 'माध्यम' का नाम लिया जा सकता है।"

सपादिका डा. रमा सिंह

अक्षरा-1 . सितंबर-नवंबर 1982

हम इस दर्शन के खिलाफ हैं कि रचना दोस्तों के बीच का मामला है और न समझा जाना या कम समझा जाना श्रेष्ठ रचना की कसौटी है, अलबत्ता 'अक्षरा' के पाठक से हम प्रबुद्धता, नई संवेदना और साहित्यिक संस्कार की उम्मीद जरूर करेंगे। हमारा विश्वास है कि ऐसे पाठकों की संख्या कम नहीं है, फिर भी अगर पत्रिकाओं की तादाद इतनी बढ़ जाने के बावजूद पाठक वर्ग सिकुड़ता चला जा रहा है तो कहीं उन तक पहुंचने की इच्छा और प्रक्रिया में खोट जरूर होगी। अक्षरा इसे तलाशेगी और वह सचमुच सही लेखकों और सही पाठकों के बीच सार्थक पुल बनाने का प्रयास लगातार करती रहेगी।

'अक्षरा' मूलतः सृजन-पत्रिका है, लेकिन हम मूर्खता की हद तक शास्त्रीयता का निषेध नहीं करते, उस विवेचन का मान करते हैं, जिसमें पांडित्य और सृजन की सीमाएं मिलती हैं।

संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय

मधुमती . सितम्बर 1983

प्रसंगवश

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रश्न लेखन की प्रतिबद्धता से जुड़ा है। हमारे यहां लेखक वर्गों और गुटों में विभाजित है। यह विभाजन केवल राजनीतिक मान्यताओं के आधार तक ही सीमित नहीं है। जनवादी, प्रगतिशील, रूपवादी, व्यक्तिवादी आदि मेमेबाजी, आन्दोलन की तरह सचालित की जा रही है इनके अलग-अलग जलसे व यात्रायें आयोजित हो रही हैं। ऐसे रचनाकारों की संख्या नगण्य है जो खेतों, खलिहानों या कारखानों की पैदाइश हों। आखिर क्रांति, ड्राइंगरूमों में वैचारिक बहस का मुद्दा भले ही

पर आज लेकिन उसकी पगार भी मजदूरों, किसानों, कर्मचारी वर्ग में ही गरमाने वाली है।

सपादक डा. प्रकाश आतुर

कृति परिचय वर्ष 4, अंक-1-2

"हिन्दी की लघु पत्रिकाओं पर इन प्रहारों का क्या प्रभाव हुआ है, यह तो समय ही बतायेगा, पर एक बात यह अवश्य हुई है कि इन 'धुनरी छाप' पत्रिकाओं के सम्पादक लघु पत्रिकाओं से भयाक्रांत अवश्य हुए हैं। और उन्हें लगा कि कहीं उनके आसन ही न डोल उठें। इसलिये अपने बचाव के लिये अपयश ही जल्दबाजी में यह कार्य वे कर बैठे—इससे अनायास ही कुछ फायदे लघु पत्रिकाओं को हुए—पहले सारे देश में पत्रिका के प्रचार प्रसार की डुगी उन्होंने पीटी—दूसरे सारी लघु पत्रिका कदम मिलाकर चलने को उद्यत हुईं। अपने आप उन्होंने लेखकों के एक बड़े वर्ग को एक मंच पर बैठाने का उपक्रम किया है।" इस सन्दर्भ में मुझे बनारस से निकलने वाली पत्रिका 'सनाहूत' के सम्पादक श्री देवप्रकाश पाण्डे का सुझाव उपयुक्त लगा कि भिन्न-भिन्न स्थानों से निकलने वाली पत्रिकाओं को मिलकर एक समवेत अंक निकालना चाहिये जिसकी कम से कम एक लाख प्रतियाँ प्रकाशित हों और उन्हें वितरित कर दिया जावे और वितरित होते ही टाइम बाम्ब की तरह उसकी सामग्री ज्वालामुखी-सा विस्फोट कर दे—एक हलचल—एक क्रान्ति—एक सनसनी पैदा कर लोगों के चेहरों को तमतमा दे।"

सपादक ललित कुमार श्रीवास्तव

संदर्भ : अंक 5

……… ओर से—

"एक लम्बी अवधि तक 'संदर्भ' अपनी व्यवस्था ठीक करने में व्यस्त रहा, अतएव आपको जो प्रतीक्षा करनी पड़ी उसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

आशा करते हैं कि अपनी अनियमितता के बावजूद 'सन्दर्भ' लगातार आपके हाथों में हम सौंपने की कोशिश करते रहेंगे।

साहित्यकार की प्रतिबद्धता का प्रश्न हमारी समझ से आज का एक बड़ा ही जीवन्त प्रश्न है। हमें लगता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा यह सवाल अधिक से अधिक जटिल और गम्भीर होता जायगा, किन्तु मुझे पूरा

विश्वास है कि रचनाकार को उसी अनुपात में इस प्रश्न से जूझने के लिये भी तैयार होना पड़ेगा। हमने 'संदर्भ' के प्रस्तुत अंक को इसी समस्या से संघर्ष करने और उत्पन्न दबावों को दूर करने के लिये पाठकों और लेखकों तक पहुंचाने का प्रयास किया है।"

संपादक . सरलदीप सिंह

संधान अंक 8, 1983

संपादकीय

'संधान' का अस्तित्व क्या है ? 'संधान' की मंजिल आखिर क्या है ?—कुछ ऐसे ही प्रश्न इधर लिखित और मौखिक दोनों रूपों में हमसे अक्सर पूछे गए हैं। साहित्यकारों के अनगिनत पत्र देश के विभिन्न हिस्सों से हमें रोजाना मिलते हैं, मगर देश की दिल्ली चुप है। लगता है कि दिल्ली के तथाकथित कॉफीहाउसिए साहित्यकार अब अपने अब तक के किए पर सोचने लगे हैं। हम जानना सिर्फ यही चाहते हैं कि उन के करतूतों में एक भी प्रतिभा पनप क्यों न सकी ? उनकी दे-ले की नीति ने उन्हें क्या बना दिया है—प्रबुद्ध पाठक खूब पहचानते हैं, और संधान ने अपनी प्रतिबद्धता से सब की आखें भी खोल दी हैं।' "

संपादक . विजय

साक्षात्कार · अंक संख्या 44-45

जुलाई-अगस्त 1983 "·····यानी पढ़ने वालों की कमी नहीं है। इसके बावजूद हिन्दी की अच्छी से अच्छी किताब का संस्करण दो हजार से अधिक का नहीं होता, सामान्यतः हजार ग्यारह सौ के ही संस्करण होते हैं।" "हिन्दी पुस्तकों की इस स्थिति पर विचार करने के बाद वे साहित्यिक पत्रिकाओं की स्थिति पर कहते हैं,—"साहित्यिक पत्रिकाओं के हाल तो और गए-गुज़रे हैं; अच्छी से अच्छी पत्रिका भी विज्ञापनों या संस्थानों के बूते निकल पाती है; पेट काट कर निकाली जाने वाली पत्रिकाओं की असली-नकली प्रतियां नि.शुल्क भेजी जाती हैं।"

संपादक सोमदत्त

पूर्वग्रह : अंक 48

सम्पादकीय

"1974 में 'पूर्वग्रह' को प्रकाशित करने की पृष्ठभूमि में हमारी यह गम्भीर चेष्टा थी कि हम साहित्य को अपने समय की समूची सांस्कृतिक और कला गतिविधियों से जोड़ें । अन्य कलाओं के मानवीय सरोकार का बुनियादी स्वरूप साहित्य के सरोकारों से भिन्न नहीं है । ये सभी अन्ततः एक सघन, गहरी, संवेदनशील मानवीय चेष्टाएं ही हैं, और जब हम संस्कृति की बात सोचते हैं तो ये सभी मानवीय सक्रियताएं उसके अर्थ में आवश्यक तौर पर अन्तर्निहित होती हैं । साहित्य, संगीत या चित्र या नाटक के अवबोध और आस्वाद का असली धरातल भी अलग नहीं है— "साहित्य को संगीत या कविता को चाक्षुष बिम्बों या चित्र में बदलते हम अपने भीतर हमेशा पाते हैं ।

सम्पादक : अशोक वाजपेयी, सह सम्पादक : उदय प्रकाश

कविताश्री : प्रवेशांक

लघु सम्पादकीय

इन अनगिनत गद्य पत्रिकाओं में कविता को वैसा ही स्थान प्राप्त है जैसा कि भोज में भिखारी को । कहानी, आलोचना, विज्ञान, भूगोल, चिकित्सा आदि की अपनी अपनी पत्रिकायें हैं । कवियों के गौरव-रक्षार्थ 'कविताश्री' का प्रकाशन हुआ है ।

अधिकांश पत्रिकाओं ने अंधेर मचा रखा है । उनका दृष्टिकोण वाणिज्य प्रथम है, साहित्य बाद में । भद्दे, झूठे विज्ञापन छापकर पैसे लूटना तो कुछ उच्च कोटि के जनप्रिय पत्रों की भी दुर्नीति है । विज्ञापन का सम्पूर्ण विरोध कर पत्रकारिता के क्षेत्र में 'कविताश्री' ने पहली बार साहित्यिक क्रांति की है । 'कविताश्री' में आदि से अन्त तक ठोस साहित्य ही रहता है । कहना चाहिये कि आपके हाथों में पत्रिका न देकर हम प्रति-माह केवल लागत मूल्य पर एक पुस्तक समर्पण करते हैं । परवाह नहीं, आर्थिक विपत्तियों के कितने तीखे थपेड़े सहने पड़ेंगे । बस, एकान्त कामना है कि साहित्य की मर्यादा अपने पवित्र आदर्शों के साथ सुरक्षित रहे । सब कुछ निर्भर करता है साहित्य-प्रेमी पाठकों और ग्राहकों पर । उदारमना कवियों और लेखकों पर । सविनय नव वर्ष शुभ शुभकामनाएं ।

सम्पादक : नलिनी बाला

स्रोतस्विनी, अंक 8

मैं यह स्वीकार करता हूं कि वर्षा-अंक विलंब से प्रकाशित हो रहा है। एक साहित्यिक पत्रिका के लिए जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है, उन सभी को क्रमशः साक्षात्कार होता जा रहा है। हमारे साहित्यिक बंधु असहयोग-आन्दोलन के सूत्रधार बन रहे हैं। पत्रिका सुविधा-जीवियों को अधिकाधिक सुविधा जुटाने में सप्रयास है, थकी नहीं है। 'स्रोतस्विनी' की हर लहर एक नया स्पर्श देने के लिए उत्सुक रहती है। वह मर्यादा को जानती है, बाढ़ की उद्वेगकर संभावनाओं से परिचित है। वह तट पर खड़े मौन तमाशबीनों की दासी नहीं है। वह स्वाभिमान से प्रवहमान है। प्रार्थना नहीं, निवेदन है कि इसकी गति में जहाँ शैथिल्य देखें—इसे सावधान करें।

संपादक : मधुर शास्त्री

इन लघु पत्रिकाओं, नियतकालीन पत्रिकाओं और अनियतकालीन पत्रिकाओं के ये सम्पादकीय इस बात के साक्षी हैं कि साहित्य की नई धाराएं, नई विचारधाराएं, नये प्रतिमान इन पत्रिकाओं के माध्यम से प्रतिष्ठित हुये। नए हस्ताक्षरों की सामर्थ्य को उजागर करने का श्रेय इस 'साहित्यिक पत्रकारिता' को है।
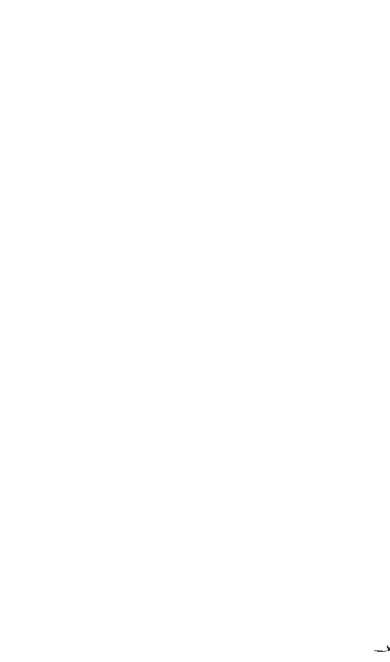
सं	पत्रिका	सम्पादक	पता
1	अर्थ	शरद, शेष मणि पाण्डेय	138, नादान महल रोड लखनऊ
2	अमीन	रगनाथ 'सत्य'	गोपाल निवास, कुण्डरी रकावगज, लखनऊ-4
3	अधुना	अचल राजपूत	बी-2 बी 34 जनकपुरी नई दिल्ली-18
4	अणिमा	शरद देवड़ा	अणिमा कार्यालय 41 ए, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता-9
5	अग्रगामी	रामरतन नीरव	मौहल्ला चूड़ीवालान जौहरी बाजार, जयपुर-3
6	अमिता	कुमार मनोचा	23, हजरतगज लखनऊ
7	अनुबध	श्री सुरेन्द्र	'चन्द्रलोक', गणेश मार्ग बापूनगर, जयपुर
8	अर्बुदा सन्देश	देवेन्द्र प्रसाद दवे	देवेन्द्र प्रिन्टर्स, द्वारा श्री रामानन्द प्रिंटिग प्रेस काकरिया रोड अहमदाबाद-380022
		मणि मधुकर	मनोहर बिल्डिग, मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर
		...ल और उर्मिला	32 बी, कर्नल विश्वास रोड, कलकत्ता-19
		कुमार, अविधा	दक्षिण मंदिरी पटना

12 प्रतिमा	शरद देवड़ा प्रियदर्शी प्रकाश	3, प्रताप घोष लेन कलकत्ता-7
13 मनस्विता	देवेन्द्र उपाध्याय	30/21 शान्ति नगर दिल्ली
14 म	म दे ना	5/1/1 बी, दुर्गाचरण मित्र स्ट्रीट, कलकत्ता
15 अपर्णा	रामप्रति उपाध्याय	वार्फी हाउस, 4 हरिघोष स्ट्रीट, कलकत्ता-7
16 अनाहूत	चन्द्रमाल मधुव्रत	बी 20/55 भेलूपुर वाराणसी-1
17 अनुवाक्	डॉ वचनदेव कुमार	शोध पत्रिका, हिन्दी विभाग राँची विश्वविद्यालय
18 अकेला	विश्वनाथ गुप्त	तिनसुकिया असम
19 आकण्ठ	हरिशंकर अग्रवाल वंशी माहेश्वरी अरुण तिवारी	467, पचमढ़ी रोड पिपरिया (म प्र)
20 आमुख	कंचन कुमार	डी-53/90, डी, नारायण नगर, वाराणसी-1
21 आरम्भ	विनोद कुमार भारद्वाज	10 ए, सिंगारनगर लखनऊ-5
22 आद्यन्त	रघनाथ राकेश	वैद्यनाथ धाम, देवघर बिहार
23 आइना (त्रैमासिक)	राजेन्द्र प्रसाद सिंह	आधुनिका, खबरा रोड मुजफ्फरपुर (बिहार)
24 आवेग	प्रसन्न कुमार ओझा नरेन्द्र गुप्ता, हरेन्द्र कोठिया	64, बिहारी मार्ग रतलाम (म. प्र)

25 भोर	विजेन्द्र कुमार विला	कौड़ियान मुहल्ला भरतपुर (राजस्थान)
आकंठ	हरिशंकर अग्रवाल	आज़ाद वार्ड पिपरिया-461775
आधान	विक्रम सैनी	1/69, रविशंकर शुक्ल नगर, इन्दौर-452008
A इन्दीवर	मधुसूदन साहा एम ए प्रधान सम्पादक	भारतीय छात्रावास मन्दीचक, भागलपुर-1
B उपमा	बृजलाल वर्मा कृष्ण कुमार कोमल	उपमा प्रकाशन प्रा. लि पो बा 458, कानपुर-1
C उत्कर्ष	गोपाल उपाध्याय	108/38 तालव मगनी मुकुल, लखनऊ
D उन्मेष	सलिल गुप्त	उन्मेष साहित्यिक संस्था 290/11
E एकान्त	श्यामनारायण बेजरा	पार्वती प्रकाशन मदार गेट, बरेली
F भोर	विजेन्द्र कुमार विला	कौड़ियान मुहल्ला भरतपुर (राज.)
26 भोरण उदांग	उपेन्द्र पंत, श्याम किशोर सिंह, प्रमोद द्विवेदी	3/बी-4 टीचर्स हास्टल विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म. प्र)
27 कविता (अर्द्धवार्षिक)	भागीरथ भार्गव	कविता प्रकाशन, अलवर
28 कहानीकार	कमलगुप्त	के 30/37 अरविन्द कुटीर, वाराणसी-1

29 कलम (त्रैमासिक)	[illegible]	48 एम, पार्क स्ट्रीट [illegible], [illegible] माहेश्वरी कलकत्ता
30 कल्पना	बद्रीविशाल पित्ती	516, सुल्तान बाजार हैदराबाद
31 कथा भारती	महेन्द्र कार्तिकेय	1/9, विवेकानन्द सोसायटी, लेडी हार्डिंग रोड, बम्बई-16, डी. डी.
32 कथायोग	महेन्द्र जैन	मोदियों वालों का रास्ता जयपुर-3
33 कथा	मार्कण्डेय	2 डी मिन्टो रोड इलाहाबाद
34 कथानक	सुनील कौशिश	13/121, गोविन्दनगर कानपुर-208006
35 कथा वर्ष	देवेश ठाकुर	मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम पुल, मेरठ (उ प्र)
36 कथन	रमेश उपाध्याय	B 3/4, राणा प्रताप बाग दिल्ली-110007
37 कात्यायनी	अश्विनी कुमार द्विवेदी	24, शिवाजी मार्ग लखनऊ-1
38 कालबोध (त्रैमासिक)	यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र	साले की होली, बीकानेर
39 केन्द्र	योगेन्द्र कुमार लल्ला प्रबन्ध सम्पादक सत्यवीर मलिक	आर्टस् एण्ड लेटर्स 57, दरियागज दिल्ली
40 केरल ज्योति	मत्री	केरल हिन्दी प्रचार-सभा त्रिवेन्द्रम-14 (केरल)

41 कोंपा	विजय अमरेश	बोरिंगरोड पटना-1
42 कक (द्विमासिकी)	निर्मल	दयानन्द मार्ग, धानमण्डी रतलाम (म प्र)
43 गल्पभारती	आर. सी. सिंह मार्कण्डेय सिंह	16/17, कॉलेज स्ट्रीट कलकत्ता-12
44 चर्चा	योगेन्द्र दवे	ब्रह्मपुरी-पीपलिया जोधपुर-34200
45 चिरंतन (मासिक)	केदारनाथ कलाधर श्रीमती जयती सिंह देवेन्द्र प्रसाद सिंह	श्रीमती जयती सिंह राठौड जयश्री प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 10 डी, राजेन्द्र नगर, पटना-16 दूरभाष-50006
46 जीवन प्रभात	सत्यनारायण मिश्र	जीवन प्रभात प्रेस, 221 गुरु गोविन्दसिंह इंडस्ट्रियल बम्बई-400063
47 जनभारती	लाल बहादुर सिंह	बंगीय हिन्दी परिषद् 15, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट कलकत्ता-12
48 ज्योत्स्ना	शिवेन्द्र नारायण	एन. पी. कॉलोनी पटना-7
49 तटस्थ	कृष्ण बिहारी सहल	सहल सदन, पिलानी राजस्थान
50 तारिका	सुभाष नमन	कहानी लेखन महाविद्यालय अम्बाला छावनी-133001
51 तुम्हारे नाम	रामनाथ	प्रकाशन संस्थान, 216 श्री रामनगर, शाहदरा दिल्ली-110032

52 दर्पण	शलम, नईम, रणजीत नीलम	15/1 डा. एच के चटर्जी लेन हावडा-7
53 दर्पण	श्याम श्रेष्ठ	ताज मैन्सन, 31, सर्कस एवेन्यू कलकत्ता-17
54 दिशा	प्रभात सरसिज	मिन्टो टावर रोड गिद्धौर, मुंगेर
55 दिशान्तर	ललन भँवर	अक्षरा सिन्दरी, धनबाद, बिहार
56 दिशा उन्मेष	अजनी कुमार सिन्हा	एस 83/ए, स्लीपर ग्राउन्ड आलमबाग, लखनऊ-5 (यू
57 दृष्टिकोण	शिवचन्द्र शर्मा शिवमंगल	अखिल भारतीय हिन्दी शोध मंडल, चीनी कोठी-3 बुद्ध मार्ग, पटना-9
58 दीपन	रमेश मालवीय	विमल प्रकाशन, मिर्जापुर रोड पटनी (म प्र)
59 दश	ललन भँवर अक्षरा	सिन्दरी, धनबाद बिहार
60 नया रास्ता	शंकरलाल खीरवाल	नया रास्ता कार्यालय जमशेदपुर-6
61 नवगीत	डॉ. शिवशंकर शर्मा	राम मन्दिर मार्ग हरसूद (खंडवा) म प्र
62 नागफनी	सुरेन्द्र तिवारी	24 बी, गिरीश मुखर्जी रोड कलकत्ता-25
63 निवेदिता	गोविन्द दोदराजका	10, बाटरमु स्ट्रीट, कलकत्ता-1

64 नीरा	वसन्त वसु	एल 5/ए राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
65 नीलपत्र	के विक्रम	12/24, ब्रह्मनाल वाराणसी
66 परिधि	कृष्ण बिहारी सहल होतीलाल भारद्वाज	सहल सदन पिलानी, राजस्थान
67 पर्याय	वीरेन्द्र पार्थ	नया यारपुर, पटना-1
68 परिदृश्य	चन्द्रिका प्रसाद मिश्र	66, बलराम दे स्ट्रीट कलकत्ता-6
69 परागन्ध	डॉ ओ. पी. त्यागी	चण्डी रोड हापुड, उत्तर प्रदेश
70 परामर्श	सुरेन्द्र बारलिंगे, राजेन्द्र प्रसाद, आनन्द प्रकाश दीक्षित	पुणे विश्वविद्यालय प्रकाशन पुणे
71 परिशोध	डॉ धर्मपाल मैनी सह-डॉ वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता डॉ यश गुलाटी	पंजाब विश्वविद्यालय सैक्टर 24-डी चण्डीगढ़
72 पुनश्च	दिनेश द्विवेदी	स्टेट बैंक के सामने, विपिननगर इटारसी-461111 (म प्र)
73 प्रगति	विजेन्द्र अनिल	नया यारपुर पटना-7
74 प्रयास	कमलेश भारतीय ब्रजमोहन, फूलचन्द मानव	शारदा मुहल्ला, नवाँ शहर दो आब, पंजाब
75 प्रतिमान	त्रिलोकीनाथ श्रीवास्तव	732, पान दरीबा इलाहबाद-3

76 प्रज्ञा	डॉ. रामगोपाल [illegible]	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-281005
77 [illegible]	गंगाधर त्रिपाठी	पो बा नं 8217 दहिसर (पूर्व), बम्बई
78 मधुमति	जगदीश श्रीवास्तव वीरेन्द्र त्रिपुरारी	112, गाडिया [illegible] उदयपुर
79 मधुमती (त्रैमासिक)	हरि[illegible] उपाध्याय	डी/22, शान्ति पथ तिलकनगर, जयपुर-4
80 मधुलिका	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी शुभम साहनी	मधुलिका प्रकाशन, 78, सिंदी साहित्य सदन, पुलैंदी रायबरेली
81 मधुमती	डॉ प्रकाश 'आतुर'	राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर
82 मन्तव्य	हनुमन्त मनगटे	12/192, बरारीपुरा छिंदवाड़ा
83 मरु श्री	गोविन्द अग्रवाल	लोक सस्कृति शोध सस्थान नगर श्री, चूरू (राज)
84 मन्तव्य	स -हनुमन्त मनगटे सम्पादिका-विमला जैन	ज्ञानदीप प्रकाशन छिंदवाड़ा (म प्र)
85 मिथक	सुरेन्द्र मोहन	14 ए, गोपाल नगर जालन्धर
86 मुक्त धारा	नरेन्द्र शर्मा	पर्सपेक्टिव पब्लिकेशन्स (प्रा. लि) एफ-24, भगतसिंह मार्केट नई दिल्ली-1
87 मूल्यांकन	शम्भुनाथ चतुर्वेदी	38, माडल हाउसेस लखनऊ

88 युग प्रतिमान	उद्भ्रान्त	117/72 नीर क्षीर नगर बड़ा बाजार, कानपुर-5
89 युवा रश्मि	प्रबध किशोर पाठक	डी-2/2 पेपर मिल कालोनी लखनऊ-226006
90 रचना	एम. प्रतिभन के सी विक्रम	के 12/34, ब्रह्मनाल वाराणसी
91 रंग	रामावतार चेतन	598, शान्तिनगर चेम्बूर, बम्बई-71
92 राष्ट्रवाणी	म सनत कुमार	राष्ट्रीय भाषा भवन नारायण पेठ पूना-30
93 रंगायन	डॉ. महेन्द्र भानावत	लोक कला मण्डल उदयपुर (राज.)
94 लय	नीरज	47, मैरिस रोड अलीगढ़
95 लहर	प्रकाश जैन, मनमोहिनी	पो. बा. 82, महात्मा गांधी मार्ग

100 वातायन	हरीश भादानी	5, डागा बिल्डिंग, बिस्सों का चौक, बीकानेर
101 विनिमय	अनिल सिन्हा	शिवपुर अखाड़ा, महेन्द्र पटना-7
102 विद्वम	अनय	63, विवेकानन्द रोड कलकत्ता-6
103 विभक्ति	निर्भय मल्लिक	3, प्रताप घोष लेन कलकत्ता-7
104 विद्यार्थी शिक्षा	अशोक श्रीवास्तव	विद्यार्थी शिक्षा 'मासिक' फैजाबाद (उ प्र)
105 शिक्षा प्रदीप	प्रकाशवती हरकावत	शिक्षा प्रदीप, कार्याल मारवाड़ी रोड, भोपाल
106 शब्द	ओमप्रभाकर जुगमन्दिर तायल	कविता प्रकाशन अलवर
107 शताब्दी	ओंकार ठाकुर	1910, राइट टाउन जबलपुर-2 (म प्र)
108 सचिवालय	बृजमोहन	हिन्दी परिषद् उत्तर प्रदेश सचिवालय
109 सनीचर	ललित कुमार शर्मा	1, अद्वैत मल्लिक लेन कलकत्ता-6
110 समवेत	अनय और सिद्धेश	63, विवेकानन्द रोड कलकत्ता-6
111 समीक्षा (त्रैमासिक)	डॉ. गोपाल	राजेन्द्र नगर पटना-16
112 समीक्षा	देवेन्द्रनाथ शर्मा	पुनीत विश्राम, पटना-6

113 सताह्वान	शुभू पटवा	बी. सेठिया लेन बीकानेर
114 सम्बोधन	कमर मेवाड़ी, समर्थ जैन गुल्फाम	कांकरोली (राजस्थान)
115 सामयिक साहित्य	सोमप्रकाश	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली-6
116 साक्षात्कार	सुदीप बैनर्जी	6 B 5/1 प्रोफेसर्स कॉलोनी दिल्ली
117 सिताभा	किसलय बंद्योपाध्याय	सी 10, नया गांधीनगर गाजियाबाद
118 सिर्फ	नन्दकिशोर नवल	रानीघाट पटना-6
119 सुधा बिन्दु	राजनाथ पांडेय राम अवधेश त्रिपाठी	राजस्थान सेवा समिति अहमदाबाद
120 सूत्रधार	बजरंग	चौधरी प्रिंटिंग प्रेस 3, नीलमणि हलधर लेन कलकत्ता-13
121 समूह	प्रहलाद दुबे	विद्या प्रकाशन सार्कडीह जमशेदपुर
122 समर्थ	दीनानाथ सिंह	सिंहवाहिनी प्र. गोड्डा सथान बरगना
123 सम्प्रेषण	चन्द्रभानु भारद्वाज	टी. डी 5/743 मिश्र राजामार्ग, जयपुर
124 सचेतना (त्रैमासिक)	डॉ. महीपसिंह	एच-108, शिवाजी पार्क दिल्ली-26

पंडित युगल किशोर शुक्ल

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में पं. युगलकिशोर शुक्ल का नाम ऐतिहासिक महत्व रखता है। वे हिन्दी के प्रथम पत्रकार के रूप में बड़े सम्मान के साथ सदैव स्मरणीय रहेंगे। वस्तुतः उन्हें ही हिन्दी पत्रकारिता का अग्रदूत समझना चाहिए। शुक्ल जी के संबंध में ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय ने लिखा है कि "युगल किशोर जी पहले कलकत्ते की सदर दीवानी अदालत में प्रोसीडिंग रीडर थे। फिर उसी अदालत में वकालत करने लगे थे। 'उदन्तमार्तण्ड' के अस्त होने के कई वर्ष बाद युगल किशोर शुक्ल ने एक दूसरे हिन्दी पत्र को भी जन्म दिया था जिसका नाम 'सामदन्त मार्तण्ड' था, परन्तु हिन्दी के अन्य पत्रों की तरह यह भी अधिक दिन तक नहीं चल सका। परन्तु शुक्ल जी के वे सारे प्रयत्न उनकी निष्ठा और उनकी राष्ट्रीय चेतना के परिचायक है। बंगीय परिवेश से प्रेरणा लेकर उन्होंने हिन्दी समाज के उन्नयन के लिए पत्रों का प्रकाशन किया था। सजातीय सहयोग के साथ सरकारी सहायता पाने की भी उन्हें पूरी आशा थी, किन्तु हिन्दी के दुर्भाग्य से युगल किशोर जी को किसी प्रकार की सहायता नहीं मिली।

"उदन्तमार्तण्ड" के सम्पादक रूप में उन्होंने जिस उद्देश्य और संकल्प की विज्ञप्ति की थी, उसके प्रति वे सदैव समर्पित रहे। हिन्दी वालों के लिए उन्हें बंगला के पत्रों से संघर्ष करना पड़ा और प्रायः अपमान भी सहना पड़ा। उन्होंने यह सारा संघर्ष अपने ही बल पर किया। हिन्दी की हित-कामना से प्रेरित होकर पं. युगल किशोर जी ने जो महत् प्रयास किया था उसके मूल में हिन्दी का पक्ष-समर्थन भी था। पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने शुक्ल जी के संघर्ष का उल्लेख इस प्रकार किया है—"उन दिनों कलकत्ते में हिन्दी भाषियों की संख्या चाहे जितनी हो, उनमें दो रुपये खर्च करके इसे पढ़ने की रुचि अवश्य ही न थी। सरकार 'जामे-जहानुमा' नामक फारसी पत्र और 'समाचार-दर्पण' नाम के बंगला पत्र को आर्थिक सहायता देती थी। इसी के भरोसे युगल किशोर जी ने भी 'उदन्तमार्तण्ड' का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु वह न मिली और किसी धनी-मानी से सहायता मिलने की आशा भी न रही, तब यह 'मार्तण्ड' अस्ताचल को चला गया। और जिस उत्साह से सम्पादक ने पहले अंक में प्रकाशन-विज्ञप्ति दी थी उसे एक गहरी व्यथा के साथ 4 दिसम्बर 1827 ई. को ये पंक्तियां लिखनी पड़ी—

आदि पुरुष किसी तरह जीवित नहीं थे।

'उदन्तमार्तण्ड' के सम्पादक के भाषा ज्ञान की चर्चा करते हुए प. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है उसके सम्पादक बहुभाषाविद थे। यह उनका बड़ा भारी गुण था और यद्यपि 'उदन्तमार्तण्ड' केवल डेढ़ वर्ष निकला तथापि प्रूफ की भूलें जो प्रेस में बराबर होती रहती हैं, उनका ध्यान रख कर हमें निःसंकोच कहना पड़ता है कि 'उदन्तमार्तण्ड' हिन्दी का पहला समाचार पत्र होने पर भी भाव और विचारों की दृष्टि से गुणशालि पत्र था। हिन्दी के पहले पत्र की यह एक बड़ी उपलब्धि थी जिसका सम्पूर्ण श्रेय प. युगल किशोर शुक्ल को था।

प. छोटूलाल मिश्र

प छोटूलाल जी सारस्वत ब्राह्मण थे। उनका जन्म कलकत्ता में हुआ था और प्रारम्भिक शिक्षा काशी में हुई थी। बाल्यकाल काशी में पितामह के साथ व्यतीत हुआ था। लगभग 20 वर्ष की अवस्था में उन्होंने "भारतमित्र" का प्रकाशन किया था। कालान्तर में वे व्यवसाय में चले गये और उन्होंने लाखों रुपया कमाया। उनके वृद्ध पुत्र प दीनानाथ जी ने अपने पिताश्री की चर्चा करते हुए मुझे बताया कि उनका व्यक्तित्व बड़ा भव्य था। दिसम्बर 1935 में लगभग अस्सी वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ।

व्यवसाय में चले जाने के बाद भी प छोटूलाल जी साहित्य और साहित्यिक आयोजन में सक्रिय रुचि लेते थे। वे उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला के अच्छे

जानकार थे। उर्दू में उनकी विशेष रुचि थी। स्वय व्यवसायी होते हुए भी उनका व्यवसायियों पर बड़ा प्रभाव था और सभी उनका पण्डित के रूप में आदर करते थे।

सामाजिक कार्यों में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। कलकत्ते की छोटी मोटी अनेक साहित्यिक, शैक्षणिक और सामाजिक सस्थाओं के वे सदस्य और सहयोगी थे। कलकत्ते के प्रथम हिन्दी विद्यालय—विशुद्धानन्द व सरस्वती विद्यालय की स्थापना में उन्होंने आर्थिक सहयोग भी दिया था। इसी प्रकार सामवेद विद्यालय, शिवकुमार भवन और सारस्वत खत्री विद्यालय के वे सक्रिय सहयोगी थे।

उस युग के महापुरुषों से उनका अच्छा सम्बन्ध था। कलकत्ते से बाहर भी उनके नाम और व्यक्तित्व का प्रभाव था। महामना प. मदनमोहन मालवीय और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से उनका स्नेह-सम्बन्ध था। इसी प्रकार जम्मू के महाराज प्रतापसिंह उन्हें बहुत स्नेह करते थे।

प छोटूलाल मिश्र ने सन् 1883 ई तक "भारतमित्र" का सम्पादन किया था। इससे अलग होने के बाद भी वे किसी-न-किसी रूप से इस पत्र से सम्बद्ध थे।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने "हिन्दी अखबार" की कहानी कहते हुए "भारतमित्र" के सन्दर्भ में प. छोटूलाल मिश्र का उल्लेख इस प्रकार किया है "पण्डित छोटूलाल मिश्र इसके प्रथम सम्पादक और जन्मदाता हैं। सन् 1883 ई तक वहीं इसे चलाते थे। उन्होंने इसकी उन्नति के लिये बडी चेष्टा की, साथ ही सम्पादन भी बहुत अच्छी रीति से किया। उनके लिखने का ढग बहुत साफ और भाषा सरल थी।"

प. दुर्गाप्रसाद मिश्र

पं दुर्गाप्रसाद मिश्र जम्मू के सारस्वत ब्राह्मण थे। कलकत्ते के दीर्घ प्रवास के बावजूद जम्मू और काश्मीर के प्रति उनके मन में बड़ी अनुरक्ति और श्रद्धा थी। "प. दुर्गाप्रसाद मिश्र जम्मू के सांवा ग्राम के निवासी थे और जम्मू नरेशों के पाधावा उपाध्याय अथवा राजगुरु थे। जम्मू के महाराज गुलाब सिंह ने ही अगरेजी कम्पनी से काश्मीर खरीदा था इसलिए जम्मू काश्मीर नरेशों के वे गुरु थे।" कलकत्ते की कमजोर जलवायु और पारिवारिक विपत्तियों की चोट से उनका पुष्ट शरीर बहुत जल्दी टूट गया और वे दीर्घजीवी न हो सके।

प. दुर्गाप्रसाद मिश्र के साहित्यिक अवदान का मूल्याकन करते हुए प अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने लिखा है · "पं दुर्गाप्रसाद मिश्र ने समाचार पत्र प्रकाशन से कुछ कमाया नहीं उलटे घर के धान पयान में मिलाये। परन्तु उनको इस काम का शौक था, नशा था, इसलिये कुछ उटक नाटक किया ही करते थे। "उचितवक्ता"

जब बन्द हो गया था तो पाठकों और मिश्र जी के मित्रों ने इसके पुन. प्रकाशन का अनुरोध किया था, इसकी चर्चा करते हुए 26 मई 1894 ई. के "उचितवक्ता" में उन्होंने अपने पुराने अनुभव लिखे थे, ""उचितवक्ता" मेरी अनुपस्थिति के कारण बन्द हो गया। यद्यपि मित्र लोग इसके पुन: प्रकाश के लिये अनुरोध करते रहे परन्तु मेरी इच्छा शिथिल ही हो गई थी, जिस समय मैंने भारतमित्र को जन्म दिया था जिस समय "सारसुधानिधि" का अनुष्ठान पत्र प्रचार किया था और जन्म देने का उद्योग किया था तथा अंशीदार बनकर रुपये घाटे दिये थे, उस समय हिन्दी की इस राजधानी में बड़ी ही आवश्यकता थी।"

हिन्दी के पुराने पत्रकारों की महत्व चर्चा करते हुए प. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि "प. सदानन्द मिश्र, प. गोविन्दनारायण आदि ने भी हिन्दी पत्र सम्पादन और प्रकाशन का कार्य किया सही, परन्तु प. दुर्गाप्रसाद मिश्र यदि न होते तो उनके कामों को कोई नहीं जानता।" हिन्दी पत्रकारिता की भित्ति पुष्ट करने के लिए प. दुर्गाप्रसाद मिश्र जी ने कठिन तपस्या की।

प. सदानन्द मिश्र

दूसरे दौर के हिन्दी पत्रों में "सारसुधानिधि" अत्यन्त तेजस्वी पत्र था जिसकी विस्तृत विवेचना पूर्ववर्ती पृष्ठों में की गयी है। यह पत्र प. सदानन्द मिश्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था। सदानन्द जी के पिता प. योगध्यान मिश्र कलकत्ता संस्कृत कालेज में ज्योतिष के अध्यापक थे। उन्होंने 1829 ई में "सारसुधानिधि प्रेस" की स्थापना की थी। पण्डित गोविन्दनारायण कहा करते थे कि लल्लूलाल जी का प्रेमसागर पहले पहल "सारसुधानिधि प्रेस" में ही छपा था।" प. योगध्यानजी प. गोविन्द नारायण जी के फूफा थे। इस प्रकार गोविन्द नारायण जी और सदानन्द जी के बीच पारिवारिक सम्बन्ध था।

"सारसुधानिधि" के पहले वर्ष में जब घाटा हुआ तो अन्य साथियों के साथ ही प. गोविन्दनारायण जी ने भी इस पत्र से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और सदानन्द जी अकेले पड़ गये। फिर भी बड़ी निष्ठा से उन्होंने इस पत्र का संचालन सम्पादन किया। इस पत्र की विस्तृत विवेचना करते हुए प. सदानन्द जी के अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण की संक्षिप्त चर्चा हमने की है। उनकी राजनीतिक चेतना बड़ी प्रखर थी। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि देशवासियों का राजनीतिक [illegible] [illegible] [illegible] ही देशोन्नति सम्भव है। देशवासियों [illegible] [illegible] [illegible] राजनीतिक चेतना का अभाव था। [illegible] ही देशवासियों के [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] की "सारसुधानिधि" के [illegible] [illegible]।

उनका विश्वास था कि "राजनीति और समाजनीति का संशोधन जैसा समाचारपत्रों से होता है, वैसा दूसरे उपाय से नहीं हो सकता।" इसलिए उन्होंने देशी पत्रकारों से अनुरोध किया था, "हम अपने सहयोगियों से सविनय निवेदन करते हैं कि कदाचित् हमारे हिन्दुस्तानी भाइयों के राजनैतिक और समाजनैतिक संस्कारों को देख निराश हो राजनैतिक और समाजनैतिक विषयों की समालोचना छोड़ न दें। · · जब हम संस्कारक कार्य में व्रती हुए हैं तो हम लोगों को उचित है कि यावज्जीवन इस गुरुतम कार्य के साधन में प्रवृत्त रहें। ······हम लोगों के प्रधान आश्रय धीरता, साहस और अध्यवसाय हैं। यदि हम इन तीनों के आश्रय से निरन्तर अपने कर्त्तव्य साधन में प्रवृत्त रहेंगे तो नि:सन्देह ईश्वर हमारा सहायक हो हमारे हिन्दुस्तानियों के संस्कारों को सुधार हमारी ब्रिटिश गवर्नमेंण्ट द्वारा भारतवर्ष की पूर्व स्वाधीनता, पूर्व समृद्धि और पूर्वोन्नति दिखावेगा। अपाततः इसका उपाय एक आप ही सब समाचारपत्र हो, अतएव हम पुनः अनुरोध करते हैं कि कदाचित किसी के कहने से शिथिल प्रयत्न न होना। जो आपको विपरीत सुझाते हैं वह उसी भ्रष्ट सरकार के वशवर्ती हैं। यह निश्चय है कि जो कुछ भारतवर्ष का हित होना है वह समाचारपत्रों से ही होना है।" इसी विश्वास, निष्ठा और अशिथिल प्रयत्न में प. सदानन्द मिश्र ने अपने दायित्व का पालन किया।

बरतानिया साम्राज्यवाद का विरोध प. सदानन्द जी बड़े कड़े शब्दों में करते थे। अत्याचारी गवर्नर जनरल लार्ड लिटन का विरोध जिस स्पष्टता और जिन कड़े शब्दों में उन्होंने किया था, उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि उनकी स्थिति अपनी उग्र राष्ट्रीयता के होते निरापद नहीं थी। किन्तु उन्हें व्यक्तिगत सुरक्षा और समृद्धि की चिन्ता नहीं थी। कदाचित् इसीलिए वे अन्याय का इतना बड़ा विरोध कर सके थे। 30 मार्च 1879 ई के "सारसुधानिधि" की सम्पादकीय टिप्पणी—"उन्नीसवीं शताब्दी! और ये सभ्यता!!!" की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं. "क्या इसी को सभ्यता, राजनीति, धर्मनीति और याङ्कति कहते हैं? जो लोग अपनी सभ्यता, राजनीति, धर्मनीति और याङ्कति के आगे प्राचीनों को असभ्य, मूर्ख, धर्म ज्ञानशून्य और नृशंस कहते हैं, ये क्या उन्हीं लोगों के काम हैं!! गत फरासीस और जर्मन का युद्ध, रूस और टर्की का युद्ध, ये सब युद्धों से स्पष्ट प्रमाण होता है कि सभ्य और असभ्य राजा और शेर इनमें कुछ भी फरक नहीं है। क्योंकि असभ्यकाल के लोग जिस प्रकार क्रोध, लोभ, हिंसा, बैर, निर्यातन और जिगीषा आदि पशुधर्म के वशीभूत हो निरपराधियों के रुधिर से देश प्लावित करते थे, अब के सभ्य महापुरुष भी उसी प्रकार रुधिर की नदी बहाया करते हैं।' ······हम लोग प्राचीन काल को असभ्य कहते हैं, परन्तु अबके जिगीषु राजाओं का व्यवहार देख कर ये सन्देह होता है कि प्राचीनकाल असभ्य था ··· का समय असभ्य है।" स्मरणीय है कि यह बात

उस समय बड़ी कड़ी थी जब लार्ड लिटन का शासन था और प्रेस एक्ट लागू था। सरकार का समर्थन करने वाले पत्रकारों से प. सदानन्द जी की अक्सर लड़ाई हो जाती थी। "भारतबन्धु" के साथ हुए झगड़े के मूल में यही बात थी।

पं. अमृतलाल चक्रवर्ती

हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार पं. अमृतलाल चक्रवर्ती अहिन्दी भाषा भाषी थे। उनका जन्म सन् 1963 में पश्चिमी बंगाल के चौबीस परगना जिलान्तर्गत नांदरा नामक ग्राम में हुआ था। चक्रवर्ती जी का बाल्यकाल पुरातनप्रिय पिता श्री के सम्पर्क में बीता। उस जमाने में जैसे हर गरीब ब्राह्मण का लड़का संस्कृत पढ़ता था, चक्रवर्ती जी भी अपने बाल्यकाल में घर पर संस्कृत पढ़ते थे। किशोर वय में ही उनका सम्पर्क हिन्दी प्रदेश से हो गया। गाजीपुर में वे अपने मामा और मौसी साथ काफी दिनों तक रहे। वहां उन्होंने फारसी भी पढ़ी और बाद में हिन्दी आदमी हो गये।

पिता जी की मृत्यु के बाद उनके ऊपर गार्हस्थिक दायित्व का बोझ आ ग जिसके चलते उन्हें बड़ी कठिनाइयों से मुकाबला करना पड़ा। कुछ दिनों त कलकत्ते में छोटा मोटा काम करके उन्होंने कुछ रुपया एकत्र कर लिया और फि सपरिवार हिन्दी प्रदेश में लौट आये। इलाहाबाद में एक साधारण नौकरी की, फिर हाईकोर्ट में क्लर्क रहे। कानून की परीक्षा को पास कर लेने पर मुन्सिफ बनने की सम्भावना थी, किन्तु रामपाल सिंह जी के आमन्त्रण पर उनके पत्र "हिन्दुस्तान" के सम्पादन का दायित्व ले लिया। वहां हिन्दी के धौरन्धरिकों से उनका सम्पर्क बढ़ा और वे क्रमशः हिन्दी के निकट पहुंचते गये।

"हिन्दुस्तान" की नौकरी छोड़ने के बाद चक्रवर्ती जी "भारतमित्र" सम्पादन करने लगे। वहां भी अधिक दिन नहीं रह पाये। "हिन्दी बंगाली" प्रेरक और आदि सम्पादक चक्रवर्ती जी ही थे। "हिन्दी बंगवासी" से मुक्त होकर बम्बई चले गये और "श्री वेंकटेश्वर समाचार" में काम करने लगे। किन्तु वहां से भी हिन्दी प्रेम के अतिरिक्त आग्रह के कारण नौकरी छोड़ देनी पड़ी। सन् 1914 ई में "श्री वेंकटेश्वर समाचार" का दैनिक संस्करण इन्हीं के सम्पादकत्व में निकलता था। "कलकत्ता समाचार" में भी वे रहे और "भारतमित्र" सम्पादक पं. बाबूराव विष्णुपराड़कर से सामाजिक विषयों को लेकर उनकी प्रायः कहा सुनी होती रही। "कलकत्ता समाचार" छोड़ कर वे एक बार फिर "श्री वेंकटेश्वर समाचार" में गये थे लेकिन इस बार भी अधिक दिनों तक न रह सके और देशबन्धु चितरंजनदास के

पत्र "फारवर्ड" में अच्छे वेतन पर नौकरी कर ली। यहाँ भी सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण वे टिक न सके और हिन्दी साप्ताहिक "श्री सनातनधर्म" का सम्पादन भार सभाला।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

रोहतक जिले के गुडियानी नामक ग्राम में कार्तिक शुक्ल 4, 1922 विक्रमाब्द को गुप्त जी का जन्म हुआ था। गुप्त जी जन्मना वैश्य और कर्मणा ब्राह्मण थे। किशोर वय में ही उन्हें पारिवारिक चिन्ता ने घेर लिया था, तथापि वे उससे आक्रान्त न हो सके और अपने विद्याव्यसन को निरन्तर संवर्द्धित करते गये।

हिन्दी के श्रेष्ठ औपन्यासिक मुन्शी प्रेमचन्द की तरह बालमुकुन्द गुप्त भी उर्दू की दुनिया से हिन्दी में आये थे। उनकी शैली में जो एक वेगवती शक्ति है उसमें उर्दू का भी निश्चित रूप से योग है। अपने अनन्य मित्र प. दीनदयाल जी की सलाह से उन्होंने चुनार से निकलने वाले "अखबारे चुनारे" का सम्पादन किया था। उर्दू में "शाद" नाम से गुप्त जी लिखा करते थे।

गुप्त जी की पत्रकारिता के आदर्श स्वरूप की विस्तृत विवेचना "भारत मित्र" के सन्दर्भ में पूर्ववर्ती पृष्ठों में की गयी है। हमने देखा है कि अपनी देशभक्ति और औचित्य के आग्रह के कारण "हिन्दुस्थान" और "हिन्दी" बंगवासी की नौकरी उन्होंने छोड़ दी थी।

16 जनवरी, सन् 1899 का "भारतमित्र" पहली बार बाबू बाल मुकुन्द गुप्त के सम्पादन में निकला था। इसी दिन से लेकर साढ़े आठ वर्ष तक "भारतमित्र" के माध्यम से उन्होंने हिन्दी और हिन्दुस्तान की सेवा की।

गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना बड़ी प्रखर थी। लार्ड कर्जन जैसे अत्याचारी गवर्नर जनरल के शासन काल में गुप्त जी के हाथों में "भारतमित्र" जैसा तेजस्वी शस्त्र था जिससे उन्होंने लार्ड कर्जन पर खुल कर प्रहार किया था। गुप्त जी "भारतमित्र" के सर्वेसर्वा थे, इसलिए स्वेच्छा और स्वतन्त्रता से अपनी बात कहते थे। "सारसुधानिधि" के माध्यम से प. सदानन्द मिश्र ने लार्ड लिटन जैसे अत्याचारी गवर्नर जनरल का जिस तेजस्विता से विरोध किया था उसी राष्ट्रीय अन्दाज में गुप्त जी ने भी लार्ड कर्जन पर प्रहार किया था। "शिवशम्भु का चिट्ठा" और "शाइस्ता खां के खत" का उल्लेख किया जा चुका है और गुप्त जी की निर्भीकता और राष्ट्रीयता का स्वरूप भी देखा जा चुका है, उसकी पुन. आवृत्ति आवश्यक नहीं। "शिवशम्भु का चिट्ठा" हिन्दी गद्य का श्रेष्ठ उदाहरण है जिस पर विचार

करते हुए भारतेन्दु युगीन साहित्य के मर्मज्ञ समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "ये व्यंग्यपूर्ण निवन्ध भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र की परम्परा के अनुकरण करके लिखे गये है। भँगेडी शिवशम्भू के दिवास्वप्नों के बहाने गुप्त जी विदेशी शासन पर खूब फब्तिया कसी हैं।" हिन्दी भाषा के वैशिष्ट्य विकास के उद्देश्य से गुप्त जी ने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में "भारतमित्र" मे अनेक लेख लिखे थे। देवनागरी लिपि के उन्नायक जस्टिस शारदाचरण मित्र से उनका स्नेह सम्बन्ध था और वे मित्र महाशय के सक्रिय सहयोगियों में थे।

भाषा और व्याकरण को एक परिनिष्ठित व्यवस्था देने के लिए उन्होंने "भारतमित्र" के माध्यम से हिन्दी के पण्डितों से संघर्ष भी किया था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ गुप्त जी का जो ऐतिहासिक विवाद हुआ था उसके मूल्य महत्व की विवेचना पूर्ववर्ती पृष्ठो मे की गयी है। स्मरणीय है कि गुप्त जी परम वैष्णव थे। ब्राह्मण भक्त और धर्मभीरु थे। आचार्य श्री द्विवेदी जी के प्रति उनके मन मे बड़ा सम्मान था, द्विवेदी जी के समसामयिक और समवयस्क होते हुए भी द्विवेदी जी का जैसा विरोध गुप्त जी ने किया, किसी दूसरे को वैसा साहस नहीं हुआ। द्विवेदी जी को प्रणम्य मानते हुए भी गुप्त जी ने उनकी "पण्डिताई" पर तीखे व्यंग्य छोड़े थे जिससे द्विवेदी जी तिलमिला उठे थे। मात्र एक शब्द—"अनस्थिरता" को लेकर हिन्दी के दो प्रख्यात धौरन्धरिकों मे जो लड़ाई हुई थी, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है।

हिन्दी अखबारों का इतिहास लिख कर गुप्त जी ने एक बहुत बड़े ऐतिहासिक अभाव की पूर्ति की थी। यद्यपि उनके इतिहास मे आज कई त्रुटियां दिखाई देती हैं तथापि उसका साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व आज भी है। गुप्त के सबंध में प. लक्ष्मीनारायण गर्दे ने लिखा है कि "गुप्त जी के अन्दर स्वधर्म प्रीति की एक ज्योति थी। स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान उसी की प्रकाश-मालाएं बन कर उनका व्यक्तित्व विकसित कर रही थी। "हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान" इस मन्त्र के गुप्त जी एक महान साधक थे।" गुप्त जी के संबध मे यह कथन कह देना सर्वथा प्रासंगिक होगा कि जब महावीर प्रसाद द्विवेदी से पूछा गया कि इस समय सबसे अच्छी हिन्दी लिखने वाला कौन है, तब उन्होंने कहा, है नहीं, था। प्रश्नकर्त्ता ने फिर पूछा,

उग्र राष्ट्रीय स्वर के साधकों की परम्परा हिन्दी भाषी प्रदेश में अपनी उग्र वाणी के लिए बैंसवाड़ा की भूमि प्रसिद्ध है। इसी भूमि ने—यानी प्रतापनारायण मिश्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और गणेश शंकर विद्यार्थी की साधना भूमि कानपुर ने 30 सितम्बर 1880 को हिन्दी पत्रकारिता के पितामह सम्पादकाचार्य प अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी को जन्म दिया। अन्याय और अन्धकार से लड़ते वाजपेयी जी का शरीर जब सर्वथा थक गया तो अवध की अपनी प्रिय भूमि लखनऊ में उन्होंने 21 मार्च 1968 को अपनी जीवन कथा पूरी की।

वाजपेयी जी उन तपस्वी पत्रकारों में थे जिन्होंने पत्रकारिता को पेशे के रूप में नहीं बल्कि धर्म के रूप में अपनाया था, और बड़ी निष्ठा के साथ अपनाया था। कदाचित् यही कारण है कि आर्थिक उपलब्धि की चिन्ता छोड़ कर वाजपेयी जी अपने इस धर्म पर दृढ़ रहे, किसी भी प्रकार की कठिनाइयों से वे विचलित न हो सकें। तिलक युग के तेजस्वी हिन्दी पत्रकारों में उनका बहुत ऊंचा स्थान है। वे बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दो दशकों की हिन्दी पत्रकारिता के उन्नायकों में अप्रतिम और असाधारण थे।

पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर

पराड़कर जी ने अपने जीवन की गतिविधि का संकेत देते हुए एक बार कहा था कि कलकत्ता जाने का मेरा मुख्य उद्देश्य पत्रकारिता न थी प्रत्युत क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होकर देश सेवा का कार्य करना था। परिवार का खर्च चलाने तथा पुलिस की नजरों से बचने के लिए मैंने "हिन्दी बंगवासी" में सहायक सम्पादक का कार्य स्वीकार किया था। "हितवार्ता" और "भारतमित्र" के सम्पादन के साथ-साथ चन्द्र नगर की गुप्त समिति का कार्य भी मैं कर रहा था।'

प. बाबूराव विष्णु पराड़कर की जन्मभूमि काशी है। पराड़कर जी के पिता प. विष्णु शास्त्री महाराष्ट्र प्रदेश से आकर काशी में बसे थे। यहीं 16 नवम्बर सन् 1883 को पराड़कर जी का जन्म हुआ और उन्होंने यहीं से अपना सम्पूर्ण जीवन हिन्दी के विकास और प्रसार में लगाया।

बंगला भाषा के तेजस्वी लेखक सखाराम गणेश देउस्कर की प्रेरणा से पराड़कर जी को राजनीतिक दृष्टि मिली। देउस्कर जी पराड़कर जी के मामा लगते थे। उन पर लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव था। पराड़कर जी को उन्होंने "केसरी" पत्र पढ़ने की सलाह दी थी। सन् 1905 ई. के कांग्रेस अधिवेशन में पराड़कर जी ने तिलक के दर्शन किये और उसी क्षण से वे इस व्यक्तित्व को ही अपना आदर्श मानने रहे।

"हिन्दी बंगवासी" के कार्य में उन्हें विशेष रुचि नहीं थी। क्योंकि
उन की दृष्टि में प्रतिक्रियावादी था। पराड़कर जी उग्र राष्ट्रीयता के हिमा
इसीलिए "हिन्दी बंगवासी" में वे अधिक समय न रहे। देउस्कर जी के प्र
हितवार्ता" पत्र कलकत्ते से प्रकाशित हुआ और इसी पत्र में सम्पादक के
रु. 40/- प्रतिमाह वेतन पर पराड़कर जी की नियुक्ति हुई। साथ ही वे
कॉलेज में अध्यापन कार्य भी करते थे। "हितवार्ता" की नीति पराड़कर जी
अनुकूल थी। कुछ दिनों तक इस पत्र का सम्पादन पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
भी सम्भाला। वाजपेयी जी ने लिखा है "पराड़कर जी दो महिने की छुट्टी पर
गये, इसीलिए "हितवार्ता" का सम्पादन भार भी मेरे ही ऊपर आ पड़ा।
"हितवार्ता" के काम में अधिक आनन्द मिलता था क्योंकि उसकी नीति सर्वथा
अपने अनुकूल थी।

राष्ट्रीय आदर्श से प्रेरित होकर ही पराड़कर जी ने नेशनल कॉलेज में
अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था। देउस्कर जी तो वहाँ अध्यापक थे ही, पं.
अम्बिका प्रसाद वाजपेयी को भी पराड़कर जी ने हिन्दी अध्यापन के लिए बुला लिया
था। किन्तु जब इन्हें लगा कि नेशनल कॉलेज पर भी गवर्नमेंट का प्रभाव आ गया
है तब इन सभी ने अध्यापन कार्य छोड़ दिया। इसी सम्बन्ध में पं. अम्बिका प्रसाद
वाजपेयी ने लिखा है कि 'कॉलेज के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने न जाने क्यों यह सोचना
प्रारम्भ किया कि राजनीतिक सभाओं में विद्यार्थी सम्मिलित हों या नहीं। बाबू
हीरेन्द्रनाथ दत्त और मि. ए (अनन्तर सर आशुतोष) चौधरी राष्ट्रीय शिक्षा परिषद
के मन्त्री थे। चौधरी साहब का विचार था कि जिस सभा में सरकार की
निन्दा की जाये उसमें विद्यार्थी शामिल न हों। अन्य लोगों का भी मत कुछ इसी
प्रकार का था। इसलिए हम लोगों ने सोचा था कि विद्यार्थियों के लिए अन्य स्कूल
कॉलेजों से इस में भिन्न और कौन-सी विशेषता है? गवर्नमेंट का दबाव नेशनल
कॉलेज पर हो गया। अतः हम लोग नेशनल कॉलेज से चले आये।'

पराड़कर जी के जीवनी लेखक लक्ष्मीशंकर व्यास ने लिखा है कि "अरवि
अरविन्द घोष का नेशनल कॉलेज एक प्रकार से तत्कालीन क्रान्तिकारियों का एक
प्रधान केन्द्र बन गया था। पराड़कर जी इस कॉलेज में हिन्दी एवं मराठी का
अध्यापन कार्य करते थे, साथ ही साथ उनका क्रान्तिदल वालों से भी सम्पर्क होता
था। अध्यापन के समय पराड़कर जी छात्रों को [illegible] क्रान्ति का इतिहास
पढ़ाते हुए इस बात पर विशेष बल देते थे कि देश के युवकों पर भारतमाता की
[illegible] का भारी उत्तरदायित्व है। हमारा देश परतन्त्र है। इसे स्वतन्त्र करना
है।" [illegible] श्री [illegible] महर्षि श्री अरविन्द घोष पराड़कर जी

/ [illegible]

का बहुत ध्यान रखते थे और शिष्य मण्डली से उनका उल्लेख कर बराबर रहते थे। पराड़कर जी छिपे तौर पर सक्रिय क्रान्तिकारी थे, परन्तु सम्पादकीय हैसियत से क्रान्तिकारियों का विरोध भी करते थे। हिन्दी पत्रकारों की नक्षत्रावलि में पराड़कर जी की आभा का अपना वैशिष्ट्य है।

पं लक्ष्मणनारायण गर्दे

"सम्पादकीय आत्मपरीक्षण" करते हुए "विशाल भारत" अक्टूबर 1930 के अंक में पं लक्ष्मणनारायण गर्दे ने लिखा था "पत्र सम्पादन के कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने का मेरे लिए प्रत्यक्ष कारण "स्वदेशी आन्दोलन हुआ। मैं उन दिनों मराठी समाचार पत्र विशेषकर "केसरी" "काल", और 'भाला' बहुत पढ़ा करता था। समाचारों की अपेक्षा अग्रलेखादि पढ़ने में अधिक रुचि थी। जो विचार पढ़ता था, उन विचारों को प्रकट करने की भी बड़ी प्रबल इच्छा होती थी। सन् 1909 में स्व पितृतुल्य पं सखाराम गणेश देउस्कर और पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर की तथा अपनी भी इच्छा से मैं कलकत्ता आ कर "हिन्दी बंगवासी" में काम करने लगा। यथार्थ में यहीं से मेरे सम्पादकीय जीवन का प्रारम्भ होता है।"

गर्दे जी हिन्दी के एक अत्यन्त सशक्त और समर्थ पत्रकार हैं जिन्होंने देश सेवा के लिए हिन्दी पत्रकारिता को उपयुक्त माध्यम बनाया। गर्दे जी का यह निर्णय ही उनकी राष्ट्रीय निष्ठा का प्रतीक है।

पराड़कर जी की तरह गर्दे जी के जीवन में पत्रकारिता एक 'मिशन' थी। "भारतमित्र" में गर्दे जी पराड़कर जी के बाद पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के अनुरोध से कर गये थे। वाजपेयी जी ने लिखा है कि 'दिल्ली कांग्रेस में पं लक्ष्मीनारायण गर्दे से मैंने कहा, "मैं 'भारतमित्र' से अलग होना चाहता हूं और उसे आपके हाथों सौंपना चाहता हूं। इसलिए आप आ जायँ तो अच्छा हो।" वाजपेयी जी का अनुरोध स्वीकार कर गर्दे जी "भारतमित्र" में आ गये और 1920 में जब पराड़कर जी जेल से लौटे तो गर्दे जी ही "भारतमित्र" के सम्पादक थे।

गर्दे जी अपने दायित्व के प्रति बहुत सचेत रहते थे। उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ सम्पादन कार्य किया। "एक दिन गर्दे जी जब "भारतमित्र" के लिए अग्रलेख लिख रहे थे कि पत्र के व्यवस्थापक स्व. श्री यशोदानन्दन अखौरी आये और कहने लगे, "भारतमित्र" की बिक्री तो रोज रोज घट रही है। गर्दे जी के मुख से इसका उत्तर यह निकला, "आप को अपने काम से इतना अवकाश कैसे मिलता है कि आप यह शिकायत लेकर मेरे पास आये? जाइए, आप अपना काम देखिए और मुझे अपना काम करने दीजिए।" दूसरे दिन से सारी स्थिति बदल गयी। रोज रोज ग्राहक संख्या

बढ़ने लगी, केवल कलकत्ते में ही नहीं बल्कि कलकत्ते से पेशावर तक "भारतमित्र" का प्रचार बढ़ा। पंजाब के कई स्थानों से यह खबर मिली कि वहां के लोग ने "भारतमित्र" के लेख छाप-छाप कर बांटे हैं।

डा एम के बर्मन की ओर से गर्दे जी के सम्पादकत्व में 27 सितम्बर 1925 ई को "श्रीकृष्ण सन्देश" नामक पत्र का प्रकाशन हुआ था। "श्रीकृष्ण संदेश" के पहले अंक में गर्दे जी की एक टिप्पणी सम्पादकीय वक्तव्य के पहले ही प्रकाशित हुई थी। "भारतमित्र" और उसके बाद "शीर्षक से टिप्पणी थी उसका एक अंश इस प्रकार है "भारतमित्र" हमारा सार्वजनिक जीवन था और जिसका इतिहास अत्यन्त पवित्र और स्वदेश स्वधर्म की नि स्वार्थ सेवा से परिपूर्ण है। "भारतमित्र" के हम ऋणी हैं-हमने "भारतमित्र" की जो यथाशक्ति सेवा की उसे निश्चय ही उसके पूर्वेतिहास और पुण्यबल का सहारा था। ""भारतमित्र" से सम्बन्ध विच्छेद होने के पश्चात हमारा यह विचार था, जैसा कि हमने श्रावण कृष्ण दशमी के अपने अन्तिम निवेदन मे लिखा है कि "भारतमित्र" की सेवा मे जो कार्य हम कर रहे थे उस कार्य को करने का कोई अन्य साधन निर्माण करें। एक दैनिक अथवा साप्ताहिक पत्र निकालने की प्रवृत्ति हुई थी। हम ने देखा कि हमारे और बर्मन जी के विचारो मे कोई मतभेद नही है। इसलिए पृथक उद्योग का विचार आगे न बढ़ा, हम ने बर्मन जी के इस उद्योग मे ही सम्मिलित होना निश्चय किया। तदनुसार "बर्मन समाचार" की पूर्व योजना का समावेश करके "श्रीकृष्ण सन्देश" का आविर्भाव हुआ है। भगवदधिष्ठान मे लोक सग्रह साधन करने के सकल्प का ही यह समारम्भ है।"

गर्दे जी मे राजनीतिक प्रखरता के साथ साथ आध्यात्मिक शक्ति भी थी। धार्मिक ग्रन्थो का वे निरन्तर अनुशीलन करते रहते थे। श्री अरविन्द और पाण्डुचेरी की श्री मा के नाम लिखे गये उन के पत्रो की प्रतिलिपियां उन की डायरी में अंकित हैं जिनसे उनकी आध्यात्मिक चेतना का परिचय मिलता है।

गर्दे जी पर तिलक और देउस्कर जी का बहुत अधिक प्रभाव था। उनके समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में यह प्रभाव निरन्तर देखा जा सकता है। गीता उन का आदर्श ग्रन्थ था और राष्ट्रीय उन्नयन के वे आकांक्षी थे।

हिन्दी गद्य शैली के निर्माण मे उन का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन की बौद्धिक प्रखरता और चारित्रिक क्षमता की हिन्दी के विद्वानो ने मुक्त प्रशंसा की है। श्री रामनाथ 'सुमन' ने गर्दे जी का आपोत्लेख हिन्दी के विशिष्ट उन्नायकों के सदस्य के रूप मे किया है, "हिन्दी के लिए बड़े आदर्श और गौरव की बात है — — — के पत्रकारो-उन्नायकों मे गर्दे जी सरीखे व्यक्ति, बाबूराम्नाथ चतुर्वेदी,

लज्जाराम मेहता जैसे अहिन्दी भाषी थे। कदाचित् यही उस की राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय भाषा होने का प्रमाण है।"

गर्दे जी ने अपने विषय में एक बार कहा था कि, "मुझे यह सोच कर हार्दिक सन्तोष रहा है कि मैंने अपने विचार को कभी धन पर नहीं बेचा है। आज के युवक पत्रकारों से भी मुझे यही कहना है।" यह कथन इस बात का प्रमाण है कि गर्दे जी के लिए पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, एक अनुष्ठान थी।

बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल

बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल पत्रकारिता में उसी खेमे के पत्रकार थे जिनमें पराड़कर जी थे। पराड़कर जी के प्रयत्न से वे माहेश्वरी विद्यालय में प्रधानाध्यापक पद पर कार्य करते थे तथा साथ ही "कलकत्ता समाचार" में भी काम करते थे। उन दिनों के बारे में बाबू मूलचन्द्र जी ने लिखा है, "मैं बहुत परिश्रम और थकावट नाम की चीज से एकदम अनभिज्ञ था। रात को भी "कलकत्ता समाचार" पहुंच जाता और जब रात के 8-9 बजे फोरमैन महाशय कुंवर जी के पास डरते हुए अग्रलेख मागने पहुंचते, तो मामूली वार्तालाप में व्यस्त कुंवर जी उनसे पूछते कि मूलचन्द्र जी हैं या नहीं ? यदि उन्हें पता चलता कि मैं मौजूद हूं, तो रात के 9 बजे मुझसे ही अग्रलेख ले लेने का आदेश दे देते। उसी समय ध्यानपूर्वक समाचारपत्र पढ़ कर अग्रलेख तैयार कर देना पड़ता और रात के 9 बजे मुझसे ही अग्रलेख ले लेने का आदेश दे देते। उसी समय ध्यानपूर्वक समाचारपत्र पढ़ कर अग्रलेख तैयार कर देना पड़ता और रात के 11-12 बजे घर पर वापस आता।"

पत्रकार है जिन्होंने पत्रकारिता के द्वारा स्वार्थ और परमार्थ दोनों प्राप्त किये। उ
अग्रवाल की गणना बड़े प्रतिष्ठित धनी-मानी परिवारों में होती है।

भारतीय पत्रकारिता के विकास की चर्चा करते हुए प० कमलापति त्रिपाठ
लिखा है कि, "भारतमित्र ने दैनिकों की जिस परम्परा का आविर्भाव हुआ
दैनिकत्व की नयी कल्पना और प्रवृत्ति से ओतप्रोत किया। श्री मूलचन्द अग्रवाल
के "विश्वमित्र" से जो सन् 1916 ईसवी में प्रकाशित होने लगा।"......"इस
स्मार दैनिकों का काम केवल इतना था कि अंगरेजी भाषा के दैनिकों में प्रका
हुए समाचारों का अनुवाद करके अपने कलेवर को भर दें। आधुनिक, सामाजि
राजनीतिक प्रश्नों के सम्बन्ध में न कोई अपनी दृष्टि होती थी और न किसी दृ
से उद्वेलित होकर वे अपना प्रकाशन करते थे। यह स्थिति तब बदली जब "विश्व
मित्र" का प्रकाशन श्री मूलचन्द अग्रवाल के प्रयास से हुआ। श्री मूलचन्द जी ने इ
पत्र को वास्तविक अर्थ में दैनिक बनाया और उसे अंग्रेजी पत्रों के परावलम्बन
मुक्त किया। उन्होंने पत्र में नवीनता और मौलिकता भरी, वाणिज्य तथा सामाजि
और राजनीतिक प्रश्नों पर स्वतन्त्र रूप से लेखादि प्रकाशित किए। "विश्वमित्र" व
विविधता और स्वतन्त्रता वास्तव में हिन्दी दैनिकों के नये स्तर की द्योतक है। औ
हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का बहुत बड़ा श्रेय बाबू
मूलचन्द अग्रवाल को है। इस उपलब्धि के लिए मूलचन्दजी सदैव स्मरणीय रहेंगे।

बाबू शिवपूजन सहाय

पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य सेवा करने वाले हिन्दी लेखकों में आचार्य
शिवपूजन सहाय का नाम एक शिखर बिन्दु है। वे एक ऐसी शक्ति थे जिन्होंने हिन्दी
पत्रकारिता को नये आयाम दिए। विनम्रता के वे धनी थे कि अपने से छोटों को
भी विनम्र हो कर प्रणाम करते थे। यह उन के व्यवहार की विशेषता थी परन्तु
विचारों में वे बड़े दृढ थे। उन्होंने बड़े साफ शब्दों में कहा था, "समाज की नयी
तसवीर खींचने वाले लेखकों की कुत्सित कृति पर फोकस की रोशनी डालकर दुनिया
को दिखाना ही हिन्दी में सबसे बड़ा साहित्यिक आन्दोलन है। ऐसे आन्दोलन में जो
सफल हो वही हिन्दी का सबसे बड़ा पत्रकार है। ' " साहित्य क्षेत्र में जितने लोग
बिना नकेल के दौड़े फिरते हैं, उन्हें पकड़-पकड़ कर नाथना ही सफल और महान्
पत्रकार का लक्षण है, और सर्वश्रेष्ठ पत्र भी वही हो सकता है, जो साहित्य क्षेत्र से
निरंकुशता को निर्मूल कर डालने का दावा रखता हो।" समर्थ पत्रकार बाबू
शिवपूजन सहाय का यही आदर्श था। और इसी आदर्श को लेकर उन्होंने हिन्दी की
अनेक श्रेष्ठ पत्रिकाओं का सम्पादन किया। नवम्बर 1930 में उन्होंने अपने पत्रकार

जीवन के बारे में लिखा था "पहले पहल मैंने लगातार दो साल तक आरा में प्रकाशित एवं सम्प्रति समाधिस्थ मचित्र मासिक पत्र "मारवाड़ी-सुधार" का सम्पादन किया था। उसके बाद मैं कुछ दिन कलकतिया "मतवाला" के सम्पादकीय विभाग में रहा और कुछ दिन लखनवी "माधुरी" के तथा फिर दुबारा कुछ दिन "मतवाला" के। उन दिनों, कलकत्ता में रहते हुए, मैंने छः छः महीनों तक "आदर्श" और "उपन्यास तरंग" नामक मासिक पत्रों का सम्पादन किया था। अन्त में एक साल तक मलगत "समन्वय" के सम्पादकीय विभाग से हट कर मैं काशी चला आया, जहां लगभग चार-पांच वर्ष तक लगातार "हिन्दी पुस्तक भंडार" (लहेरिया सराय) का साहित्यिक कार्य सम्पादन करता रहा हूं, बल्कि पांचवें साल में सात महीनों तक मुझे "बालक" सम्पादन का सौभाग्य भी प्राप्त रहा है। इस प्रकार "सात घाट का पानी" पीने के बाद आज मैं "गंगा" घाट पर पहुंचा हूं।" कलकत्ते के मौजी और "गोलमाल" का सम्पादन भी शिवपूजन जी ने ही किया था।

"मतवाला", जो एक युग का प्रतीक था, के प्रमुख सम्पादक बाबू शिवपूजन सहाय थे। कलकत्ता प्रवास के संस्मरण लिखते हुए उन्होंने कहा है—"आरम्भ में निर्णय हुआ कि मुखपृष्ठ के लिए निराला जी प्रति सप्ताह अपनी कविता देंगे, मैं अग्रलेख, सम्पादकीय और "चलती चक्की" नामक स्तम्भ के लिए विनोदपूर्ण टिप्पणियां भी लिखा करूंगा, मुन्शी जी "मतवाला की बहक नामक स्तम्भ के लिए व्यंग्यात्मक टिप्पणियां लिखा करेंगे, समालोचनाएं भी निराला जी ही लिखेंगे, अन्य सारी सामग्री का सम्पादन और पूरे पत्र का प्रूफ संशोधन करना पड़ेगा, सम्पादक की जगह सेठ जी का नाम छपेगा। इसी निर्णय के अनुसार सन् 1923 ईस्वी सावन में "मतवाला" निकला। ...... "बहक" का बोझ भी मेरे ही ऊपर आ पड़ा। मुन्शी जी भी कभी-कभी यथावकाश कुछ लिख दिया करते थे। वे और सेठ जी अब अखबार पढ़ने का अवसर पाते तब उनमें निशान लगा कर मेरे पास उस पर टिप्पणी जोड़ने के लिए भेज देते।" इस प्रकार बाबू शिवपूजन सहाय पर "मतवाला" के सम्पादन का अधिक दायित्व था। मतवाला, वर्ष 2, अंक 1 की "आत्मकथा" शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणी में बाबू शिवपूजन सहाय की चर्चा इस प्रकार की गई है, "यहां हम उन सज्जनों का आभार अंगीकार करना भी अपना कर्तव्य समझते हैं जिनके सहृदयतापूर्ण सहयोग से हमारी यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई है।...... उनमें सर्वप्रथम उल्लेख योग्य हैं हिन्दी-भूषण बाबू शिवपूजन सहाय। ये वास्तव में हिन्दी साहित्य के भूषण हैं। उन्होंने इस यात्रा को सफल बनाने में जिस अथक परिश्रम और विचक्षणता का परिचय दिया है उसे दृष्टि में रखते हुए हम यह बिना किसी प्रकार की अत्युक्ति के कह सकते हैं कि इनका सहयोग प्राप्त न हुआ होता तो यह यात्रा हजार चेष्टा करने पर भी अधूरी ही रहती।"

बाबू शिवपूजन सहाय की पत्रकार और साहित्यिक जीवन-धारा के मिलन का एक साथ घटित होना एक महत्त्वपूर्ण संयोग था। एक रोचक और महत्त्वपूर्ण प्रसंग का उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। यह प्रसंग है कि एक बार उन्हें पता चला कि निराला की कविता 'अधिवास' सरस्वती पत्रिका से लौट आई है तो उन्होंने उसे माधुरी के सम्पादक रूपनारायण पाण्डेय को भेज दिया। माधुरी में 'अधिवास' छप गई। इस प्रकार पत्रकारिता जगत में साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन की सहज ललक बाबू जी में दिखाई देती है। मासिक 'आदर्श' पत्र को अर्थाभाव के कारण पाँच अंकों के बाद ही बंद करना पड़ा। उस समय एक पत्रकार की वेदना को स्वर देने वाला बाबूजी का कथन इस प्रकार है—"निःसन्तान होकर रहना अच्छा है पर पुत्रशोक अच्छा नहीं है। किसी लेखक को ऐसे पत्र का सम्पादन हाथ में न लेना चाहिए जिसका भविष्य उज्ज्वल न हो। भविष्य उज्ज्वल उसी पत्र का हो सकता है जिसके प्रकाशक के पास पूँजी हो साहित्य के प्रति सहज अनुराग भी हो।"

साहित्यिक पत्रकारिता में अंकुर को पोषित और पल्लवित करने वाले बाबू शिवपूजन जी का एक बहुत बड़ा स्मरणीय योगदान यह है कि 'आदर्श' पत्र में ही निराला की 'जुही की कली' सर्वप्रथम प्रकाशित हुई। मतवाला में भी साहित्यिक रचनाएं खूब छपीं, टिप्पणियां और अग्रलेख लिखते थे शिवपूजन जी। निराला की कविताएं छपती थीं। इसके मूल में सम्भवत यही बात थी कि शिवपूजन सहाय केवल पत्रकार नहीं थे, वे स्वयं साहित्य-सर्जक भी थे। पत्रकारिता और साहित्य-सर्जना का मणि-काञ्चन संयोग बाबूजी के व्यक्तित्व में था। उन्होंने पत्रकारिता को ऐसे साहित्यिक संस्कार दिए जिन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता के मार्ग को प्रशस्त किया। बाबू शिवपूजन सहाय वस्तुतः एक समर्पित पत्रकार, एक सशक्त रचनाकार पत्र-जगत में साहित्यिक प्रतिभाओं को प्रतिष्ठित करने वाले एक समर्थ सूत्रधार थे।

न केवल पत्रकार के रूप में वरन् अन्य पदों पर रह कर भी शिवपूजन जी ने साहित्य को अपना असाधारण योगदान दिया था। उन्होंने पुस्तक भण्डार, लहेरिया-सराय (दरभंगा) में कार्यरत रह कर अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया। यहाँ भी उन्होंने एक साहित्यिक परिवार बनाया और इसी दौरान वे प्रेमचन्द, प्रसाद, बेनीपुरी, दिनकर इन सभी को अपने स्नेह-सूत्र में बांधे रहे। बिहार में ही पटना से 'हिमालय' मासिक का प्रकाशन शुरू हुआ और शिवपूजन जी ने उसके सम्पादन का दायित्व वहन किया। इस पत्र के अंक बाबूजी की साहित्यिक सूझ-बूझ के परिचायक हैं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के मंत्री पद पर रह कर भी उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास की दिशा को प्रशस्त किया। वस्तुतः शिवपूजन जी के व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं। उन्होंने एक पत्रकार के रूप में अनेक पत्र-पत्रिकाओं

का सम्पादन किया; वे अनेक साहित्यकारों की रचनाओं को प्रकाश में लाए, अपने युग में उन्होंने एक साहित्यिक वातावरण की सृष्टि की। साहित्य-जगत और पत्र-कारिता के क्षेत्र में एक अविराम संघर्ष-यात्रा के राही के रूप में वे सदैव स्मरणीय रहेंगे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिन्दी पत्रकारिता का वास्तविक विकास और उसमें साहित्यिक सामग्री का-प्रकाशन वस्तुतः भारतेन्दु-युग की देन है। सन् 1868 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन किया। यह काशी से निकला। पहले यह मासिक रूप में निकला, फिर पाक्षिक हुआ और फिर साप्ताहिक। प्रारम्भ में इसमें केवल कवियों की कविताओं के संग्रह छपते थे पर बाद में इसमें राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक गद्य-रचनाएं भी छपने लगीं। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में इस पत्र का योगदान इन शब्दों में व्यक्त हुआ है, "कविवचन सुधा ने साहित्यकारों की एक पूरी पीढ़ी को भाषा, साहित्य और देशभक्ति की शिक्षा दी थी। निःसंदेह इतना गौरवपूर्ण काम किसी सम्पादक या पत्रकार ने आज तक नहीं किया। 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन प्रारम्भ कर के भारतेन्दु ने वास्तव में एक नये युग का सूत्रपात किया। पत्र-पत्रिकाओं ने हमारे जातीय जीवन को पहले कभी इतना प्रभावित न किया था और कोई भी पत्रिका हिन्दी के चोटी के लेखकों को प्रभावित करने का ऐसा निरपवाद श्रेय नहीं ले सकती जैसे कविवचन सुधा। यह पत्रिका जनता का पक्ष लेने वाली, जनता के हितों के लिए संघर्ष करने वाली, राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई नहीं वरन् उसे मशाल दिखाने वाली सच्चाई थी।" इस प्रकार भारतेन्दु जी का हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में यह योगदान था कि उन्होंने अपने इस पत्र के द्वारा राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यक्ति दी, सामाजिक परिवेश को नई राहों की ओर उन्मुख किया, चाटुकारिता और जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों से लोहा लिया और हिन्दी भाषा और साहित्य को जनता से जोड़ा। इस पत्रिका की लोकप्रियता का कारण था—भारतेन्दु जी का उदार और महत् दृष्टिकोण। राधाकृष्ण दास ने कविवचन सुधा के संबंध में लिखा है—"कविवचन सुधा का आदर सर्वसाधारण में बढ़ता गया और इसके लेख ऐसे ललित होते थे कि यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय गिने हुए थे तथापि लोग चातक की भांति टकटकी लगाए रहते थे और हाथों हाथ सब बँट जाता था।"

कविवचन सुधा का प्रमुख लक्ष्य था, भारतीयों में स्वत्व भाव का संचार करना। इसके मुख पृष्ठ पर दी गई चार पंक्तियां एक ओर तो इसकी समाज व

पत्रकारिता को स्वर देती है तो दूसरी ओर इस बात की भी प्रमाण है कि इनमें साहित्य की विविध विधाएँ प्रकाश में रही थी और जनता के हित जुड़ रहे थे, वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> खल जनन सों सज्जन दुखी मति होंहि हरिपद मति रहै।
> उपधर्म छूटैं सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै।
> बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होंहि जग आनंद लहै।
> तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहै।

यह कविता भारतेन्दु जी के आदर्श पत्रकार होने का प्रमाण देती है। हि पत्रकारिता की कटीली राह पर चल कर भारतेन्दु जी ने तमाम खतरे उठाये। सरकार ने इनके अनेक लेखों को राजद्रोह से युक्त बताया और यह प सरकार का कोपभाजन बनी। परन्तु इन विरोध और टकराहट की स्थिति भारतेन्दु जी और उग्र हो गये, उनकी लेखनिका बढ़ी और पत्रिका भी अधि अधिक लोकप्रिय होती गई। वस्तुतः कविवचन सुधा के द्वारा भारतेन्दु जी ने हि पत्रकारिता को और हिन्दी लेखन को एक नया मोड़ दिया। अपनी व्यस्तता के का भारतेन्दु ने इसे पं. चिन्तामणि राव घड़फले को सौंपा और स्वयं भी इसमें लि छोड़ दिया तब यह पत्र निष्प्राण हो गया और सन् 1885 में बंद हो गया। प्रकाशन की इस अवधि में इस पत्र ने जो कार्य किया, वह असाधारण था। भारतेन्दु जी का यह योगदान एक ऐतिहासिक उपलब्धि के रूप में सदैव स्मरण कि जायगा।

भारतेन्दु जी एक कर्मठ पत्रकार और समर्पित साहित्यकार थे। खतरों से डर का वहाँ प्रश्न ही नहीं था। भारतेन्दु जी ने सन् 1873 में काशी से ही 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकाली, सन् 1874 में इसका नाम बदलकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' क दिया। यह मासिक थी और इसमें इतिहास-साहित्य-राजनीति सम्बन्धी लेख छप थे, हास्य-व्यंग को पर्याप्त स्थान प्राप्त था। इस पत्रिका के द्वारा अनेक साहित्यिक रचनाएं प्रकाश में आईं, भाषा का रूप अधिक से अधिक संवरता गया और इस प्रकार साहित्यिक पत्रकारिता के आयाम का विस्तार हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रकांड विद्वान और आलोचक ने इस पत्रिका को 'हिन्दी के उदय' का प्रतीक माना है। उनके शब्द हैं, "हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चन्द्रिका' में प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिस को जनता ने उत्कंठा पूर्वक दौड़ कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका में हुआ।" हरिश्चन्द्र पत्रिका इन सभी उपलब्धियों के कारण साहित्यिक-पत्रकारिता में नींव के पत्थर के समान है, और भारतेन्दु हिन्दी की साहित्यिक-पत्रकारिता के संरक्षक और पोषक।

पं. प्रताप नारायण मिश्र

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता मे प. प्रताप नारायण मिश्र का असाधारण योगदान है। पत्रकारिता के क्षेत्र मे उनका उदय एक प्रकार से 'ब्राह्मण' पत्र द्वारा हुआ। यो उन्होंने 'दैनिक हिन्दोस्थान' के 'सपादक मडल' मे भी कार्य किया। इस पत्र के प्रधान सपादक थे प. मदनमोहन मालवीय। मिश्र जी पर उसके काव्य-भाग के सयोजन का दायित्व था। एक वर्ष की छोटी अवधि मे ही मिश्र जी ने इस पत्र को एक नया रूप दिया और 'साहित्य-स्तभ' शीर्षक से स्वतत्र कालम जोडा। खडी बोली की कविता से सबधित साहित्यिक विवाद को सबसे पहले इसी पत्र ने प्रकाशित किया। एक सहायक सपादक के रूप मे कार्य कर एक पत्र को साहित्यिक गध से महका देना, मिश्र जी जैसे तपस्वी पत्रकार का ही कौशल था।

'ब्राह्मण' पत्र मिश्र जी के पत्रकार-जीवन के अनेक आयामो को उद्घाटित करने वाला कीर्ति-स्तभ है। इस पत्र को मिश्र जी ने 15 मार्च 1883 ई. को कानपुर मे निकाला। इस समय मिश्र जी सत्ताईस वर्ष के थे। इसके मुख पृष्ठ पर शीर्ष स्थान पर 9 और उसके नीचे अर्धचन्द्राकृत चिह्न रहता था। यह एक एकता का और अर्द्ध चन्द्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की स्मृति का प्रतीक था। मिश्र जी के लिए भारतेन्दु जी उपास्य के समान थे। कुछ दिनों बाद यह पत्र बांकीपुर से प्रकाशित हुआ और इस समय पत्र के नाम 'ब्राह्मण' को ही अर्द्धचन्द्र मे छापा गया।

मिश्र जी ने अपने पत्रकार जीवन मे बडी कठिनाइया उठाई। परन्तु मिश्र जी पत्रकारिता को एक मिशन मानते थे, जीविका का साधन नही। ब्राह्मण खण्ड 3, सख्या 12 में उन्होंने लिखा, "हिन्दी पत्र कुछ कमाई के लिए नहीं होते, खर्च भर निकलना भी गनीमत है।" इस पत्र को निकालने मे जो कठिनाइया मिश्र जी ने उठाई उनमे अर्थ-सकट, ग्राहक-सख्या का कम होना, चन्दा वसूली न कर पाना, पैसों की शरण जाना, उधार के कारण सामग्री का आगे न छप सकना—आदि हैं। मिश्र जी की बीमारी भी बहुत बडी बाधा बनकर सामने आई थत. ब्राह्मण के खण्ड 5 संख्या 3-4 मे 'सबकी देख ली' के अन्तर्गत उन्होंने लिखा, "जब हमने बीमारी के सबब 'ब्राह्मण' बन्द कर दिया था तब उलहने-पर-उलहने देते थे, तकाजे-पर-तकाजा करते थे कि निकालो, हम लो तुम्हारे साथ हैं, तुम घबराते क्यों हो? अस्तु हमने निकाला, पर उन महापुरषो से सहायता के नाते एक पैसा, एक लेख, एक नये ग्राहक का लाभ भी मिला हो, तो हम गुनहगार।" ये अनेक कठिनाइयां मिश्र जी झेलते रहे और उनके जीवन मे यह पत्र दस वर्ष तक निकलता रहा।

पत्र का संपादन कर मिश्र जी ने हिन्दी पत्रकारिता को नई जमीन ... और सामग्री की रोचकता ने इस पत्र को बड़ा लोकप्रिय

बनाया। कानपुर मे इस पत्र में एक साहित्यिक वातावरण की सृष्टि की। भ
युग का यह एक ऐसा पत्र था जो एक लबी अवधि तक निकला और जिसने हि
भाषा को नई सामर्थ्य प्रदान की। यह एक राष्ट्रीय, सामाजिक और साहित्यिक प
था। इसके प्रमुख लेखक स्वय मिश्र जी ही थे, इसके अतिरिक्त इसके प्रसिद्ध लेख
मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीधर पाठक, राधा कृष्णदास, अयोध्यासिंह उपाध्या
'हरिऔध' थे। मिश्र जी ने हिन्दी पत्रकारिता की राह पर चलने वालों के सम
लोकहित और निष्पक्षता के आदर्श रखे। इस पत्र को उन्होंने सामान्य जन के लि
प्रकाशित किया। हास्य, विनोद और व्यग द्वारा जन-चेतना को झकझोरना मिश्र
जी जैसे निर्भीक पत्रकार का ही काम था। वे हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में एक
अप्रतिम प्रेरक व्यक्तित्व थे।

प. बालकृष्ण भट्ट

भारतेन्दु युग के लेखकों मे बालकृष्ण भट्ट का नाम अपना विशिष्ट स्थान रखता है। भारतेन्दु मडल के प्राय' सभी लेखक अच्छे निबन्धकार थे, चुटीले व्यंगों से सामाजिक-विशेषताओं को उघारने वाले थे और हिन्दी भाषा के प्रति समर्पित थे। भट्ट जी इन विशेषताओं के साथ ही एक अच्छे पत्रकार भी थे। उन्होंने सन् 1877 मे 'हिन्दी प्रदीप' निकाला। हिन्दी भाषा और साहित्य की दृष्टि से यह पत्र उस युग का एक अद्वितीय पत्र था। इस पत्र के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध म डा. रामविलास शर्मा का कथन है कि "इलाहबाद से बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' निकाला जो दीर्घकाल तक हिन्दी की सेवा करता रहा।" यह पत्र वस्तुतः भट्ट जी के स्वतंत्र विचारों और निर्भीक व्यक्तित्व का परिचायक था। इसने एक लम्बे समय तक हिन्दी की 'साहित्यिक गति-विधि को प्रकाशित किया। अपने अथक परिश्रम और अनेक संकटों को झेल कर भट्ट जी ने यह पत्र चलाया। भट्ट जी के व्यक्तित्व की दृढ़ता का यह पत्र एक प्रामाणिक दस्तावेज है। अपने समकालीन पत्रों मे यह पत्र सबसे अधिक जीवित रहा और इसने लगभग तैतीस वर्षों तक साहित्य-सेवा की और जनता का पथ प्रदर्शन किया।

भारतेन्दु युग मे शासकों की शोषक नीति पूरी तरह जनता पर हावी थी, अतः इस युग के साहित्यकारों और पत्रकारों ने इन अत्याचारों के विरुद्ध एक लम्बी लड़ाई लड़ी और राष्ट्रीय चेतना फैलाने का कार्य किया। इस काम मे 'हिन्दी प्रदीप' पत्र ने भरपूर हिस्सा लिया। अपनी जासूसी वृत्ति, स्पष्ट कहने की क्षमता और हिन्दी के प्रति समर्पण भाव से ही वे पत्रकारिता के मार्ग पर अडिग रहे। साहित्यिक पत्रकारिता के अग्रणी पत्रकार के रूप में वे सदैव प्रतिष्ठित रहेंगे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु युगीन लेखन के संदर्भ में कहा है, "हरिश्चन्द्र काल के सब लेखकों में अपनी भाषा की प्रकृति की पूरी परख थी। संस्कृत के ऐसे रूपों और शब्दों का व्यवहार वे करते थे जो शिष्ट समाज के बीच प्रचलित चले आते हैं।" ......उस काल में हिन्दी का शुद्ध साहित्योपयोगी रूप ही नहीं व्यवहारोपयोगी रूप भी निखरा।"

पं. बालकृष्ण भट्ट की भाषा भी इतनी ही प्रभावपूर्ण और प्रवाहपूर्ण थी। चन्द्रोदय शीर्षक निबंध की उनकी लिखी ये पंक्तियां इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं, "अंधेरा पाख बीता, उजेला पाख आया। पश्चिम की ओर सूर्य डूबा और वक्राकार हंसिया की तरह उसी दिशा में चन्द्र दिखलाई पड़ा। मानो कर्कशा के समान पश्चिम दिशा सूर्य के प्रचंड ताप से दुखी हो, क्रोध में आ, उसी हंसिया को लेकर दौड़ रही है और सूर्य भयभीत हो पाताल में छिपने के लिए जा रहा है।" इतनी सुन्दर भाषा तभी बन सकी जब हिन्दी की, भूमि को हिन्दी के अनेक पत्रकारों ने अपनी श्रमबूंदों से सींचा। पत्रकारिता को 'केवल समाचारों के वाहक" होने की परिभाषा से निकाल कर भट्ट जी जैसे समर्थ लेखक और पत्रकार ने साहित्य-सर्जना के विस्तृत आयाम से जोड़ा। 'हिन्दी प्रदीप' के माध्यम से और संपादन का गुरुतर कार्य वहन कर बालकृष्ण भट्ट ने साहित्यिक पत्रकारिता को ऊंचे शिखरों तक पहुंचाया है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी गद्य को परिष्कृत, परिमार्जित और एक मानक स्तर पर पहुंचाने का काम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। हिन्दी पत्रकारिता जगत में निबंध, हास्य, व्यंग, विनोद, राजनीतिक विचार, सामाजिक प्रश्नों से जुड़े लेख व टिप्पणियां आदि के प्रकाशन की शुरुआत तो भारतेन्दु युग से हो ही गई थी, परन्तु आधुनिक काल में हिन्दी कहानी के प्रारंभ और विकास का पूर्ण श्रेय 'द्विवेदी युग' को है। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में स्वीकारने और प्रतिष्ठित करने का भी श्रेय द्विवेदी जी को ही है। भाषा को व्याकरण सम्मत बनाना, उसे संवारना, साफ-सुथरा रूप देना भी द्विवेदी जी जैसे कर्मठ साहित्यकार का ही काम था। यहां यह बात कहना सर्वथा प्रासंगिक होगा कि इस सारे 'मिशन' को पूरा किया 'द्विवेदी' जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा। इस प्रकार साहित्यिक पत्रकारिता को एक प्रवाहपूर्ण गति देने का भगीरथ प्रयत्न किया द्विवेदी जी ने।

सरस्वती सन् 1900 में प्रयाग से प्रकाशित हुई। सरस्वती पत्रिका में हिन्दी की अनेक ऐसी साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित हुईं जो आज भी हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन में मील के पत्थर का कार्य कर रही हैं। इसी पत्रिका के पहले साल

में ही किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी—'इन्दुमती' प्रकाशित हुई। रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरजादत्त बाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी', वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखी बन्द भाई', मैथिली शरण गुप्त की [illegible] आदि रचनाओं को पहली बार 'सरस्वती' ने ही प्रकाशित किया। 'सुदर्शन' की प्रथम रचना 'रक्षाबंधन' भी सबसे पहले सरस्वती में छपी।

'द्विवेदी जी' द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका वस्तुतः साहित्यिक कला के निखार की ओर उस युग की साहित्यिक विधाओं को पल्लवित करने वाली ऐसी जमीन थी जिसका महत्वपूर्ण योगदान कभी नकारा नहीं जा सकता। इसे साहित्यिक पत्रकारिता की एक विशिष्ट प्रयोगशाला की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। यह पत्रिका एक ऐसा बिन्दु है जहां भारतेन्दु युग की साहित्यिक गरिमा को विकास की दिशा मिली। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही सरस्वती का प्रकाशन हिन्दी साहित्य की ओर हिन्दी में साहित्यिक पत्रकारिता की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्य-निष्ठा से हिन्दी के साहित्यिक पत्रों को सदैव प्रेरणा प्राप्त हुई और निर्बाध रूप में प्राप्त हो रही है। वे साहित्यिक पत्रकारिता के मार्गदर्शक प्रकाशपुंज हैं।

जयशंकर प्रसाद

सरस्वती के दस वर्षों के अंकों में आई हुई कहानियों से दुगुनी के लगभग—कहानियाँ छपीं। प्रसाद जी की पहली कहानी 'ग्राम', दूसरी कहानी 'चंदा', प विश्वम्भर नाथ जिज्जा की पहली कहानी 'विदीर्ण हृदय' को सबसे पहले छापने का श्रेय 'इन्दु' को ही है। अतः हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'इन्दु' पत्रिका, और जयशंकर प्रसाद का विशिष्ट योगदान है।

प्रेमचन्द

हिन्दी साहित्य मे प्रेमचन्द एक सफल और अमर कीर्ति से सपन्न उपन्यासकार और कहानीकार हैं परन्तु पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी उनका योगदान बहुत है। उनका साहित्य-सर्जक का व्यक्तित्व-पक्ष भी आरंभ से ही पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ा रहा, 'जमाना' अखबार मे वे बराबर लिखते रहे, 'आजाद' अखबार से भी उनका संबंध रहा और इन्हीं दिनों मे अनुभवों का लेखा-जोखा 'प्रेमचन्द . चिट्ठी पत्री' नामक पुस्तक (स. अमृतराय) मे हमे बराबर मिलता है। प्रेमचन्द के लेखक-जीवन का यह वह अंश था जब वे अखबारों के लिए कालम या स्तंभ लिख रहे थे। प्रेमचन्द के जीवन का पत्रकार-रूप और पत्रकार का जीवन-संघर्ष यहीं से प्रारंभ हुआ। 6 फरवरी 1913 को महुआ से 'जमाना' के एडिटर को उन्होंने जो पत्र भेजा उसके अंश इस प्रकार हैं—"अब रह गए हिन्दी रिसाले। आप मुझे अपने हिन्दी डिपार्टमेण्ट का एडिटर समझिए।"………"हिन्दी शोअरा के दिलचस्प और मुख्तसर सवाने उमरियो (जीवनियों) का सिलसिला भी दूंगा।"…… "जमाना की पावन्दिए औकात पर (समय की पाबंदी पर) आपको मुबारकबाद देता हूं।"

कॉलम लेखक के रूप मे वे 'आजाद' पत्र से संबंधित रहे। सन् 1914 मे उन्होंने अपने पारिश्रमिक की प्राप्ति के लिए जो पत्र लिखा वह भी उनके पत्रकार व्यक्तित्व का परिचायक है। उस पत्र का एक छोटा-सा अंश इस प्रकार है .—"मई के महीने मे मैंने 'आजाद' के लिए सत्रह कालम लिखे, गालिबन जून के पहले नवम्बर मे भी चार कालम से कम न होगा।"……… ……"आपने मेरा हिसाब मांगा है—

जून मे 10) जुलाई मे 5)
25 कालम 14 कालम …… मेरे ख्याल से मैंने कोई जायद मतालवा नहीं किया है।"—इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द अपने कहानी लेखन के साथ एक पत्रकार का संघर्ष भरा जीवन भी जी रहे थे। आरंभ मे वे उर्दू मे लिखते रहे, और बाद में उन्होंने सामान्य जन की हिन्दी भाषा को अपनी साहित्यिक सर्जना मे अपनाया। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी पत्रिका 'माधुरी' को अपनी सेवाएं दीं। 'हंस' के प्रकाशन द्वारा उन्होंने राष्ट्र-भाषा और हिन्दी साहित्य को बहुत

संपादक बन देने का गौरव प्रदान किया। 'हंस' के प्रकाशन के संबंध में वे स्वयं लिखते हैं कि—"हमने 'हंस' का आयोजन केवल राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-साहित्य के उद्देश्य से किया है। हमारा कोई सामाजिक स्वार्थ इसमें नहीं है...... अनुमान कीजिए कि कनाडी, तामिल, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं की सामग्री हिन्दी में उपस्थित करने के लिए हम कितना व्यय और कितना उद्योग करना पड़ा है और करना पड़ेगा। अब 'हंस' के द्वारा सम्पूर्ण भारत के साहित्य से परिचित हो जायेंगे। प्रान्तीय साहित्यों में जो कुछ श्रेष्ठ और सुन्दर है वह आपको 'हंस' द्वारा प्राप्त हो जायगा। इसके साथ ही यह पूर्ववत हिन्दी साहित्य की अनूठी रचनाएँ भी आपको भेंट करता रहेगा।" इस उद्धरण में प्रेमचंद का हिन्दी-लेखन पर यह अधिकार देखकर एक सुखद आश्चर्य होता है कि उर्दू में इतनी अच्छी रचनाएँ करने वाला लेखक किस तरह 'हंस' की भाषा से जुड़ जाता है और किन अथक प्रयासों द्वारा हिन्दी में साहित्यिक पत्र निकालने का गुरुतर भार वहन करता है।

अपने पत्रकारीय जीवन के संकटों की चर्चा करते हुए उन्होंने सन् 1930 में अपनी एक चिट्ठी में लिखा—"मैं तो आजकल बुरी तरह काम कर रहा हूं। 'हंस' ने मेरा कचूमर निकाल दिया है। दो किस्से हर माह, करीब बीस सफे एडिटोरियल और दीगर मजामीन।" प्रेमचन्द जी की लगन और हिम्मत का अनुमान उनके कथन से सहज ही लगाया जा सकता है।

'हंस' का संपादन उन्होंने बड़े उत्साह के साथ आरंभ किया था। भारत के सुदूर छोरों से भी वे इस पत्र को जोड़े रहे, यह उनकी पत्रकारिता का आदर्श था। 1935 में लिखी हुई अपनी एक चिट्ठी में वे 'हंस' के पहले अंक का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं—"हंस का अक्तूबर नवम्बर यानि पहला नं. जेर-ए-तबा है (प्रेस में है)। पहली अक्तूबर को मुकम्मल हो जायगा, ऐसा यकीन करता हूं। ""हिन्दुस्तान के मुख्तलिफ हिस्सों से मजामीन आ रहे हैं. उर्दू में डाक्टर जाकिर हुसैन, मुहीउद्दीन जोर और मुहम्मद आकिल साहब के मजामीन आ गए हैं।" "डॉ इकबाल की नज्म""डॉ. टैगोर का एक मजमून""महात्मा गाधी के मजमून भी आने को हैं।"

एक पत्रकार की और विशेष रूप से एक संपादक की सही भूमिका यही है कि वह राष्ट्रीय और सामाजिक स्थितियों को उजागर करे, समस्याएं, संभावनाएं, समाधान आदि के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करे, अपने युग के साहित्यकारों, लेखकों और विचारकों को अपने पत्र में बांधे रहे। प्रेमचंद ने माधुरी, जागरण और हंस इन सभी पत्रों में एक सच्चे पत्रकार की भूमिका निभाई। उनका 'हंस' तो साहित्यजगत में एक क्रान्तिदूत के रूप में आया, उसके द्वारा प्रेमचंद ने समाज के

यथार्थ को चित्रित किया। अच्छी-से-अच्छी साहित्यिक रचनाओं को छापा और इस प्रकार साहित्य-रचना को एक नई दृष्टि दी। संपादक के रूप में प्रेस, सामग्री संकलन, स्वलेखन आदि के इतने बोझिल कार्य से उनका शरीर चूर-चूर हो रहा था पर सकल्प के धनी प्रेमचंद ने किसी भी बाधा के सामने घुटने नहीं टेके।

एक पत्रकार और एक संपादक के रूप में उन्होंने कड़ी कड़ी परीक्षाएं दीं। अखबारी जिन्दगी के बारे में वे कहते हैं—"अखबारी जिन्दगी में किस कदर फिक्र और झंझट, उस पर पचास-साठ रुपए से ज्यादा कोई देने वाला नहीं। अभी हमारे यहां वह जमाना नहीं आया कि जर्नलिज्म को कैरियर बनाया जा सके।" पत्रकारिता के इन खतरों को भली भांति जानते हुए भी 'हंस' जैसा स्तरीय पत्र निकालना और उसे तमाम संकटों के बावजूद चलाते रहना प्रेमचंद जी जैसे समर्थ लेखक और विचारक का ही कार्य था।

अपनी अखबारी जिन्दगी के संघर्ष को प्रेमचन्द जी ने अनेक बार अभिव्यक्ति दी है। उनकी अपनी 'कहानी उनकी जुबानी' में इस प्रकार है, "1930 में 'हंस' निकाला, फिर जागरण को ले लिया। 'हंस' में कई हज़ार का घाटा उठा चुका लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। इसमें भी हज़ारों का घाटा ही होगा। पर करूं क्या, यहां तो जीवन ही एक लंबा घाटा है।" ये पंक्तियां एक समर्पित और साहसी पत्रकार के रूप में प्रेमचंद जी को उजागर करती हैं। प्रेमचंद जी ने वस्तुत: हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के लिए ऐसे आदर्श रखे, जो आज भी हमारी राष्ट्रीय नीति के आधार हैं। वहां न भाषाई लड़ाई के लिए जगह है और न क्षेत्रीय संकीर्णता के लिए। भारत की सभी भाषाओं को राष्ट्र-भाषा से जोड़ना प्रेमचंद की संपादक-दृष्टि का आधार था। पत्रकारिता के इस यशस्वी राही ने पत्रकारिता की वेदी पर ही अपने को न्यौछावर किया था, और आज प्रेमचंद केवल उपन्यासकार नहीं हैं, केवल कथाकार भी नहीं हैं, केवल निबंधकार भी नहीं हैं, वरन् सच्चे अर्थ में एक पत्रकार भी हैं और पत्रकारिता के आदर्शों को प्रतिष्ठित करने वाले एक तपस्वी भी।

बनारसीदास चतुर्वेदी

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का जन्म 28 दिसम्बर 1892 में फिरोजाबाद (आगरा) में हुआ। उन्होंने यों तो अपना जीवन एक हिन्दी अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया लेकिन 1925 में गुजरात विद्यापीठ से त्याग पत्र देने के बाद वे स्वतन्त्र पत्रकारिता के क्षेत्र में आए और यही उनका प्रमुख जीवन बन गया। कुछ दिन की स्वतन्त्र पत्रकारिता के बाद सम्पादकाचार्य श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय द्वारा हिन्दी

में प्रकाशित मासिक पत्रिका "विशाल भारत" का सम्पादन कार्य 1928 में संभाला जहां वे 1937 तक रहे। टीकमगढ़ राज्य से प्रकाशित "मधुकर" मासिक के माध्यम से उन्होंने न केवल हिन्दी पत्रकारिता के नये आयाम विकसित किये, अपितु जनपदीय आन्दोलन के द्वारा हिन्दी में लोक-भाषा और लोक-संस्कृति के जीवन स्रोतों की ओर भी संकेत किया। टीकमगढ़ छोड़ने के बाद वे मध्य प्रदेश से राज्य सभा में चुने गये, साथ ही स्वतन्त्र लेखन का उनका कार्य अबाध गति से चलता रहा जो आज 86 वर्ष की अवस्था में भी वैसे ही प्रवाहित है।

श्री बनारसीदास जी मात्र पत्रकार ही नहीं हैं; उन्होंने अपना पूरा जीवन आन्दोलनों को दिया है। गांधी जी की प्रेरणा से उन्होंने प्रवासी भारतवासियों की हित-रक्षा का कार्य उठाया। शहीदों के राष्ट्रीय सम्मान तथा उनके आश्रितों की सहायता और सम्मान दिलाने के अनथक आन्दोलन के अलावा वे किसी-न-किसी विशेष विचार-आन्दोलन से जुड़े रहे। यही उनकी नियति थी, यही उनकी विशिष्टता थी। जीवन के इस सन्ध्या काल में वे वैसे ही बेचैन और व्यस्त हैं जैसे युवावस्था में थे।

फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष, प्रवासी भारतवासी, भारत भक्त एन्ड्रूज, केशव चन्द्र सेन, सत्यनारायण कविरत्न, हमारे आराध्य, कोपाटकिन का आत्म चरित्र, थोरो का वाल्डेन, दीन बन्धु एन्ड्रूज जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों के अतिरिक्त कितने ही विशेषांकों का सम्पादन उन्होंने किया तथा शहीदों और उपेक्षित सेनानियों के लिए सैकड़ों पृष्ठ लिखे। वे पुराने और नये सभी के लिए समान भाव से उपलब्ध तथा उद्देश्यों के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित पत्रकार रहे हैं। शांति निकेतन में "हिन्दी भवन", साहित्य सम्मेलन प्रयाग में "सत्यनारायण कुटीर" तथा दिल्ली में "हिन्दी-भवन" की स्थापना में उनका महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है।

उत्तर प्रदेश तथा अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सम्मेलन के वे अध्यक्ष रहे। 1952-1964 तक राज्य सभा में सदस्य भी रहे।

हिन्दी पत्रकारिता का प्रारम्भ और विकास कलकत्ते से हुआ था जहां श्री युगल किशोर शुक्ल से लेकर अम्बिका प्रसाद वाजपेयी तक कितने ही प्रमुख पत्रकारों ने अपने जीवन के महत्वपूर्ण वर्ष बिताये। श्री बनारसीदास जी उसी परम्परा की मजबूत कड़ी हैं। उनकी सेवाओं का समादर करते हुए भारत सरकार ने उन्हें जहां पद्मविभूषण की उपाधि से विभूषित किया वहीं अन्य संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों ने साहित्य वाचस्पति, डि. लिट. आदि उपाधियों से उन्हें विभूषित किया। अपने वर्ष अतुल जीवन में लेखनी और धुने मन के बल पर वे हार नहीं गये। अपने समय के महान व्यक्तियों के वे अत्यन्त निकट सम्पर्क में थे, वैसे ही नये-से-नये रचनाकारों और पत्रकारों को उन्होंने सदैव प्रेरणा दी।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

श्री नारायण चतुर्वेदी का जन्म इटावा में सन् 1893 में हुआ। उन्होंने लन्दन ट्रेनिंग कालेज तथा लन्दन विश्वविद्यालय के यूनिवर्सिटी कालेज से शिक्षा ग्रहण करने के बाद यद्यपि अपने जीवन का मुख्य भाग एक आदर्श शिक्षक और योग्य अधिकारी के रूप में बिताया लेकिन हिन्दी के प्रचार-प्रसार और उसके गौरव की वृद्धि के लिए जो प्रयत्न पूर्वावस्था में उन्होंने प्रारम्भ किये, उनमें वे आज भी एकनिष्ठ भाव से लगे हुए हैं। मदन मोहन मालवीय, प. बालकृष्ण भट्ट तथा श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन की अगाध हिन्दी भक्ति उन्हें वैसे ही उत्तराधिकार में मिली है जैसे हिन्दी लेखन की परम्परा उन्हें अपने पिता प. द्वारका प्रसाद शर्मा चतुर्वेदी से प्राप्त हुई। व्यवस्थित, प्रौढ़, साथ ही खरे विचारों से मण्डित गद्य लिखने में वे आज भी बेजोड़ हैं। उसी तरह विनोद शर्मा के रूप में उनके ऐसा व्यंग्य लिखने वाले हिन्दी में कुछ ही लेखक हैं। उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकें अपनी दुर्लभ सूचनाओं और बेबाक शैली के कारण भविष्य में भी याद रखी जायेंगी। उन्होंने "आधुनिक हिन्दी का आदिकाल" पुस्तक लिख कर हिन्दी की अद्भुत सेवा की है।

शिक्षा विभाग तथा आकाशवाणी में अनेक उच्च पदों पर रहने के बाद उन्होंने 1954 में 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में एक नये जीवन का प्रारम्भ किया। 'सरस्वती' को श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपूर्व गरिमा दी थी। श्री चतुर्वेदी ने 1975 तक 'सरस्वती' का सम्पादन करके उसके गौरव की पुन प्रतिष्ठा की। 21 वर्षों से भी अधिक वे इस पत्रिका के सम्पादक रहे और इस बीच उन्होंने कितने ही प्रश्नों और समस्याओं पर अपनी दृष्टि और निर्णायक राय 'सरस्वती' के माध्यम से व्यक्त की। उनकी बातें बराबर ध्यान से सुनी गयीं और उनका आदर किया गया। वे हिन्दी के लिए एक समर्पित व्यक्तित्व हैं।

...त ठाकुर विद्यालंकार

1901 ... , जिला (बिहार) के कोइलरा ... थी जहां सन् 1920 में ...का परित्याग कर दिया। ... प्रसाद के साथ मिलकर सन् 1922 में इन्होंने डा. ... में उच्च अध्ययन के लिए नाम ... श्रेणी में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण

साहित्यिक ...

कलकत्ता में श्री विद्यालंकार ने कलकत्ता से प्रकाशित "[illegible]" नामक दैनिक पत्र के सम्पादक का कार्य संभाला। कुछ ही दिनों के बाद वे पंडित [illegible] द्वारा सम्पादित और कलकत्ते से प्रकाशित "स्वतन्त्र" नामक दैनिक पत्र के मुख्य सम्पादक के पद पर नियुक्त हो गए और 5 वर्षों तक वहां रह कर "स्वतन्त्र" को एक प्रमुख राष्ट्रीय पत्र बना दिया। सन् 1930 से वे कलकत्ते से प्रकाशित 'लोकमान्य' तथा 'विश्वमित्र' नामक दैनिक पत्रों के सम्पादक के रूप में कार्य करते रहे। सन् 1941 में जब "विश्वमित्र" का बम्बई संस्करण प्रकाशित हुआ तब श्री [illegible] उसके प्रधान सम्पादक नियुक्त किये गये। सन् 1944-45 में वे कलकत्ते और बम्बई दोनों ही दैनिक "विश्वमित्र" का सम्पादन करते रहे। इसी वर्ष इन्होंने वाराणसी के "आज" के सम्पादन का कार्यभार सम्भाला, जहां वे दो वर्ष तक कार्य करते रहे, फिर सन् 1947 में वे पटना जाकर दैनिक "प्रदीप" के सम्पादक बनाये गए। लगभग एक वर्ष बाद सन् 1948 में उनकी नियुक्ति पटना के 'आर्यावर्त' दैनिक पत्र के सम्पादक के पद पर हुई जहां वे 1968 तक कार्य करते रहे। लगभग 20 वर्षों तक 'आर्यावर्त' का सम्पादन करने के उपरान्त इन्होंने पत्रकारिता से अवकाश ग्रहण किया।

श्री विद्यालंकार एक विचारवान और राष्ट्रीय विचारधारा के पत्रकार रहे। इन्होंने जीवन भर देश विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों की जनता के मानसिक उत्थान को लक्ष्य बनाकर सम्पादन कार्य किया। इनके इस प्रयास का परिणाम यह हुआ कि दैनिक पत्रों में ग्रामीण अंचलों के समाचारों की अधिकता होने लगी। शासन ने उनकी सेवाओं की स्वीकृति दी और उन्हें अखिल भारतीय प्रेस सलाहकार समिति तथा बिहार प्रेस सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। सन् 1968 में वे शासन द्वारा बिहार विधान परिषद् के सदस्य मनोनीत किये गये और सन् 1974 तक इस पद पर बने रहे। वे बिहार सरकार द्वारा संगठित मैथिली अकादमी के अध्यक्ष पद पर भी रहे।

इलाचन्द्र जोशी

श्री इलाचन्द्र जोशी का जन्म 13 दिसम्बर 1902 को अल्मोड़ा में हुआ। उन्होंने कलकत्ते से अपना पत्रकार जीवन प्रारम्भ किया जहाँ वे प्रारम्भ में "कलकत्ता समाचार" के सम्पादक बने। बाद में वे कलकत्ते के ही मासिक "विश्वमित्र" पत्र के सम्पादक के रूप में निखर कर सामने आये। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका "चाँद" के सहयोगी सम्पादक के अतिरिक्त वे सुधा, सम्मेलन पत्रिका, विश्ववाणी, भारत, विश्वमित्र आदि से भी समय-समय पर सम्बद्ध होते रहे।

1950-1951 में इलाहबाद के लीडर प्रेस से प्रकाशित 'संगम' के सम्प
के रूप में उन्होंने कीर्ति अर्जित की। उस समय हिन्दी में एक नयी पीढ़ी तेजी से उ
रही थी, जिसका इलाहबाद केन्द्र था। जोशी जी के रचनात्मक कल्पनाशील तथा उ
सम्पादन ने न केवल इलाहबाद बल्कि देश के अन्य भागों के नये लेखकों के लिए स
को एक प्रभावशाली मंच के रूप में विकसित किया। धर्मयुग के प्रारम्भिक वर्ष
अपने अग्रज डा. हेमचन्द्र जी के साथ वे उसके सम्पादक रहे तथा मिश्र बन्धु
भांति जोशी बन्धु भी हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हुए।

श्री इलाचन्द्र जोशी हिन्दी के अत्यन्त प्रतिष्ठित उपन्यासकारों तथा कथा
में अग्रणी हैं, जिनकी कृतियां हैं—घृणामयी, निर्वासिता, परदे की रानी, जहाज
पंछी तथा ऋतुचक्र। ये रचनाएँ हिन्दी का यशवर्धन करती हैं।

लम्बे समय तक वे आकाशवाणी से सम्बद्ध रहे परन्तु बाद में उन्होंने व
अवकाश ले लिया और वे निश्छल उदार मन से नयी पीढ़ी को बराबर प्रेरित
रहे और स्वच्छन्द लेखक के रूप में साहित्य जगत को अपना योगदान देते
पत्रकारिता एवं सृजनात्मक-साहित्य में जोशी जी का नाम अमर है।

कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर"

श्री कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" का जन्म 29 मई 1906 में त
देवबन्द, जिला सहारनपुर में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत महावि
खुर्जा में हुई। वहीं वे प्रबुद्ध ब्रह्मचारी के साथ अध्ययन कर रहे थे जबकि सन्
ई. में महात्मा गांधी ने छात्रों से स्कूल, कालेज छोड़कर स्वतन्त्रता संग्राम में
पड़ने का आह्वान किया था। मिश्र जी भी विद्यालय छोड़कर असहयोग आन्दो
भाग लेने के लिए निकल पड़े। तब से स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक वे न केवल
जनपद के बल्कि उत्तर प्रदेश के अग्रणी स्वतंत्रता सेनानियों में रहे हैं। उन्हें
1930 में स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया है और एक वर्ष के लिये जेल गये
1932 ई. में अंग्रेज शासकों ने उन्हें ढाई साल सख्त कैद की सजा दी। सन्
ई. में वे नजरबन्द कर दिये गये और उनके प्रेस को जब्त कर के अगले को
बना दिया गया।

श्री कन्हैयालाल मिश्र मूलत कवि और साहित्यकार हैं। उन्होंने "प्र
नाम से काव्य रचना प्रारम्भ की थी और यह नाम आज उनका मुख्य नाम ब
है। उन्होंने 40 वर्ष पहले सहारनपुर के "विकास" नामक साप्ताहिक पत्र
सम्पादक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया और अपनी राष्ट्रीय भावनाओं से
"विकास" को राष्ट्रीयता का प्रतीक बना दिया। सरकार ने जब "विकास"

रामेश्वर प्रसाद सिंह ऐसे कर्मठ एवं लगनशील पत्रकार हैं जिन्होंने अपना पूरा जीवन एक पत्र के लिए समर्पित कर दिया है। इन्होंने वर्षों पूर्व "समय" नाम के जिस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया, उसे कभी बन्द नहीं होने दिया।

रामेश्वर प्रसाद सिंह ने "समय" को राष्ट्रीयता, समाज-सेवा और हिन्दी सेवा का माध्यम बनाया। पत्रकार के नाते वे हिन्दी के वरिष्ठ पत्रकारों और उत्तर प्रदेश के प्रमुख राजनीतिक नेताओं के सहयोगी और सुहृद रहे हैं। "समय" का कार्यालय लगभग आधी शताब्दी तक राजनीतिक नेताओं का अतिथि-गृह बना आया है। "समय" के माध्यम से ही उन्होंने हिन्दी सेवा का जो महान अनुष्ठान प्रारंभ किया उसकी चरम परिणति जौनपुर का "हिन्दी-भवन" है। इस विशाल भवन का निर्माण बाबू साहब ने अकेले अपने प्रयास से सारे देश से धन संग्रह करके कराया है। □